चौथी दुनिया

हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

www.chauthiduniya.com

झूठ और सच का खेल

पेज 3

जो बोलेगा, सो झेलेगा

पेज 5

टाइम्स ऑफ इंडिया और जंग ने जनता को धोखा दिया है

पेज 9

भक्ति की शक्ति

पेज 12

मूल्य 5 रुपये

दिल्ली, 8 मार्च-14 मार्च 2010

शाहरुख़ ख़ान और फॉक्स ने

ठाकरे और पूरे देश को मूर्ख बनाया

मनीष कुमार

फ़िल्म के प्रमोशन दो तरह के होते हैं. एक अच्छा प्रमोशन और दूसरा बुरा. अच्छा प्रमोशन वह है, जिसमें लोगों में ख़ुशियां बांटी जाती हैं, सकारात्मक मनोरंजन होता है और जिसमें लोग ख़ुशी-ख़ुशी शरीक होते हैं. बुरा प्रमोशन वह होता है, जिससे समाज में कलह, धार्मिक द्वेष और हिंसा फैलती है. अच्छे और बुरे प्रमोशन में यही फ़र्क़ होता है. फ़िल्म माई नेम इज ख़ान ने इतिहास में अपना नाम दर्ज़ करा लिया. यह कोई क्लासिक नहीं है और न ही यह फ़िल्म पापुलर कैटेगरी में दिल वाले दुल्हनिया ले जाएंगे की तरह है. यह फ़िल्म दूसरे सप्ताह में ही अपनी हैसियत पर आ गई. दूसरे सप्ताह में ही सिनेमाघरों के मालिकों ने इस फ़िल्म को बाहर का रास्ता दिखा दिया या फिर इस फ़िल्म के शोज कम कर दिए. कई जगहों पर माई नेम इज ख़ान को हटाकर पुरानी फ़िल्में लगा दी गई हैं. इसके बावजूद इस फ़िल्म को ग़लत वजहों के कारण याद किया जाएगा. फॉक्स-स्टार, शाहरुख ख़ान और करण जौहर ने इस फ़िल्म के लिए प्रमोशन का जो तरीक़ा अपनाया, उसे जानकर कोई भी इंसान हैरान हो जाएगा. मीडिया, नेता और सरकारों की मूर्खता का इससे बेहतर नमूना पहले कभी नहीं देखा गया.

माई नेम इज ख़ान का प्रमोशन नवंबर या दिसंबर में शुरू नहीं हुआ. इस फ़िल्म के प्रमोशन का पहला दांव शाहरुख ख़ान ने 14 अगस्त 2009 को खेला. वह भी अमेरिका में. भारत में स्वतंत्रता दिवस मनाया जा रहा था. छुट्टी का दिन था. लोग अपने-अपने घरों में टीवी देख रहे थे. ऐसे में बिजली की तरह एक ख़बर चमकी. शाहरुख ख़ान को न्यू जर्सी एयरपोर्ट पर सुरक्षा के लिहाज़ से रोका गया है और उन्हें अपमानित किया गया है. शाहरुख ख़ान ने अमेरिका से टीवी चैनलों पर फोन से इस फ़िल्म का पहला डायलॉग पूरे देश को सुनाया-माई नेम इज ख़ान एंड आई एम नॉट ए टेररिस्ट. उन्होंने बताया कि उनके नाम के पीछे ख़ान लगा है, इसलिए उनके साथ दुर्व्यवहार हुआ है. टीआरपी के भूखे टीवी चैनलों का आलम यह था कि उन्होंने देश भर में प्रायोजित जुलूस और प्रदर्शन को ऐसे दिखाना शुरू किया, जैसे अमेरिका ने भारत पर हमला कर दिया हो. ऐसी घटना पहले भी हो चुकी है. देश के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम आज़ाद को भी सुरक्षा जांच के लिए रोका गया था. देश के कद्दावर नेता एवं रक्षा मंत्री होते हुए जॉर्ज फर्नांडीस के साथ भी यही हुआ था. मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री बाबूलाल ग़ौर को तो केवल अंडरवियर पहनने की इजाज़त दी गई थी. ऐसा हर किसी के साथ होता है, लेकिन इसे मुद्दा नहीं बनाया जाता. यह बात और है कि अमेरिका में स्टार के प्रतियोगी टीवी चैनल सीएनएन ने उसी दिन यह ख़बर भी दिखाई कि शाहरुख ख़ान अपनी फ़िल्म के प्रमोशन के लिए अमेरिका आए हैं. इस फ़िल्म का विषय नस्लवाद से जुड़ा है और उन्होंने नॉर्मल सिक्योरिटी चेकअप को मुद्दा बनाकर काफ़ी पब्लिसिटी हासिल कर ली है. अगर शाहरुख ख़ान के साथ दुर्व्यवहार हुआ तो उन्होंने कोई मामला क्यों नहीं दर्ज़ कराया. सिर्फ़ मीडिया में बयानबाज़ी करके वह क्या हासिल करना चाहते थे? यह बात और है कि जिस किसी ने माई नेम इज ख़ान देखी, उसे यह समझाने की ज़रूरत नहीं है कि फ़िल्म का पहला सीन 14 अगस्त के वाकये का नाट्य रूपांतर है. फ़िल्म में भी मिस्टर ख़ान के साथ एयरपोर्ट के अधिकारियों ने कुछ नहीं किया और असल ज़िंदगी में भी शाहरुख ख़ान के साथ ऐसा ही हुआ. आज की तारीख़ में इस मामले को लेकर दुनिया की किसी भी अदालत में कोई केस नहीं है.

माई नेम इज ख़ान के निर्माण में कई बड़े नाम और बड़ी कंपनियां जुड़ी हैं. इसमें शाहरुख ख़ान का रेड चिली प्रोडक्शन, करण जौहर का धर्मा प्रोडक्शन भी शामिल है. इसके अलावा इस फ़िल्म के लिए पहली बार फॉक्स सर्चलाइट और स्टार नेटवर्क ने साझीदारी करते हुए फॉक्स स्टार बैनर बनाया. भारत के बाहर इस फ़िल्म के वितरण अधिकार फॉक्स स्टार के पास हैं. यह भी याद रखना चाहिए कि फॉक्स और स्टार दुनिया के दो सबसे शक्तिशाली मीडिया हाउस हैं. फ़िल्मों के अलावा इनके पास दुनिया भर में कई टीवी चैनल और बड़े-बड़े अख़बार हैं. अमेरिका, यूरोप और भारत में इनकी पहुंच सीधे केंद्रीय मंत्रियों और अधिकारियों तक है. यह बात भी सच है कि इन कंपनियों के पास दुनिया की सबसे बेहतरीन प्रमोशनल टीम है, जो जब चाहे जहां चाहे, विवाद खड़ा कर सकती है. समाज में कोहराम मचा सकती है. यह ख़बरें बनाने, उन्हें टीवी और अखबार में प्रकाशित करके दुनिया भर में हंगामा खड़ा करने की ज़बरदस्त ताक़त रखती है. इसलिए माई नेम इज ख़ान के प्रमोशन का सारा ज़िम्मा इन कंपनियों के पास होना स्वाभाविक है. माई नेम इज ख़ान की प्रमोशन टीम दुनिया भर में सक्रिय थी. चाहे वह यूरोप का कोई देश हो या फिर अमेरिका. हर जगह फॉक्स स्टार की प्रमोशन टीम ने पूरी दक्षता के साथ फ़िल्म को प्रमोट किया और उसमें सफलता पाई. इस टीम ने भारत और भारत के बाहर के देशों के लिए एक सटीक फ़ार्मूला बनाया. इसकी रिसर्च इतनी पक्की है और यह जानती है कि यूरोप और अमेरिका में वे फ़िल्में ज़बरदस्त हिट साबित होती हैं, जो वहां की जीवनशैली पर सवाल उठाती हैं. माई नेम इज ख़ान इसी अमेरिकन शैली पर सवाल उठाने वाली फ़िल्म है. साथ ही भारत, पाकिस्तान और पश्चिम एशिया के देशों में पहले से ही अमेरिका के ख़िलाफ़ वातावरण है. साथ ही कुछ कट्टरवादी संगठनों की वजह से भारत में धार्मिक उन्माद खड़ा करना बड़ा आसान हो गया. फ़िल्म माई नेम इज ख़ान के प्रमोशन का फ़ार्मूला इन्हीं बातों पर आधारित था. फॉक्स स्टार की अन्य फ़िल्में भी कई मसलों पर विवादित रही हैं. स्लमडॉग मिलेनियर को लेकर यह कंपनी विवाद के घेरे में आ चुकी है. इसके प्रमोशन में जिस तरह भारत के ग़रीबों को पेश किया गया, उससे यही साबित होता है कि इन कंपनियों को यह अच्छी तरह से पता है कि भारत के कौन से विषय, विवाद और स्टार्स विदेशों में बेचे जा सकते हैं. यह इनकी मीडिया की ताक़त का ही असर है कि स्लमडॉग मिलेनियर की बाल कलाकार रूबीना को उसके पिता द्वारा तीन लाख डॉलर में बेचने की ख़बर फैलाकर इस फ़िल्म का प्रमोशन किया गया था. कुछ साल पहले वाराणसी में दीपा मेहता की फ़िल्म वाटर की शूटिंग के दौरान हंगामा हुआ. फ़िल्म वाटर के वितरण अधिकार भी फॉक्स फ़िल्म्स के पास थे. लेकिन, माई नेम इज ख़ान का प्रमोशन अपने आप में इतिहास है. इस फ़िल्म की प्रमोशन टीम ने एक ही झटके में राजनीतिक दलों, मीडिया, मंत्रियों, सरकारों और देश की जनता को बेवकूफ़ बना दिया. हैरानी की बात यह है कि ये लोग बेवकूफ़ भी बन गए और इन्हें इस बात की भनक तक नहीं है.

यह एक शर्मनाक़ स्थिति है कि माई नेम इज ख़ान विवाद ने ऐसा रूप अख्तियार कर लिया, जहां राज्य सरकार ने फिल्म को रिलीज और हिट कराने का ज़िम्मा अपने सिर ले लिया हो. हद तो तब हो गई, जब उप मुख्यमंत्री आर आर पाटिल ख़ुद फ़िल्म देखने थियेटर पहुंच गए. जिस हिसाब से कांग्रेस और एनसीपी की सरकार ने इस फ़िल्म को रिलीज कराने में अपनी सारी ताक़त झोंक दी, अगर वैसी ही कोशिश ग़रीब टैक्सी वालों के लिए की गई होती, तो मुंबई की सड़कों पर बिहार एवं यूपी के टैक्सी ड्राइवर और परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों को दौड़ा-दौड़ाकर पीटा न गया होता.

अब सवाल यह है कि ऐसे प्रमोशन की ज़रूरत क्यों पड़ी. फ़िल्म से जुड़े सभी निर्माताओं को इस बात का अंदाज़ा था कि यह फ़िल्म ज़्यादा नहीं चलेगी, क्योंकि ऐसी ही कहानी पर आधारित करण जौहर की ही फ़िल्म कुर्बान बॉक्स आफिस पर पिट चुकी थी. माई नेम इज ख़ान का हाल भी कहीं कुर्बान जैसा न हो, इसलिए एक आक्रामक रणनीति बनाई गई. शाहरुख ख़ान और करण जौहर की रणनीति साफ़ है. इस फ़िल्म को 50 करोड़ रुपये की लागत से बनाया गया और फॉक्स ग्रुप को 90 करोड़ रुपये में भारत के बाहर के अधिकार बेच दिए गए. मतलब यह कि फ़िल्म रिलीज़ होने से पहले ही करण जौहर और शाहरुख ख़ान मुनाफ़े में थे. इस फ़िल्म के सुपरहिट होने पर भी मुंबई में सिर्फ़ 10 करोड़ रुपये ही कमाए जा सकते थे, जो फ़िल्म की कुल कमाई के 10 फ़ीसदी के बराबर हैं. माई नेम इज ख़ान के रणनीतिकारों ने इसी 10 करोड़ रुपये पर जुआ खेला. बॉक्स आफिस का गणित साफ़ है कि ख़राब से ख़राब हालत में भी मुंबई से 4-5 करोड़ रुपये आ सकते हैं. यह समझने के लिए किसी को बहुत बड़ा रणनीतिकार होने की ज़रूरत नहीं है कि मुंबई में हुई घटनाओं का असर मुंबई के बाहर होगा. मुंबई में अगर शिवसेना ने फ़िल्म का विरोध किया और टीवी पर इसे जमकर दिखाया गया तो देश के दूसरे हिस्सों में लोग फ़िल्म देखने ज़रूर निकलेंगे. प्रमोशन के इस ख़तरनाक खेल को फॉक्स-स्टार की टीम

(शेष पृष्ठ 2 पर)

अशोक चव्हाण

आर. आर. पाटिल

अधिकारियों का तर्क है कि चौधरी का तबादला एक रूटीन का हिस्सा है और वह पटना में रहकर भी झारखंड पर नज़र रख सकते हैं.

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

नीयत पर संदेह

सत्ता के गलियारों में होने वाली हर छोटी-बड़ी हलचल अक्सर गोपनीयता के अंधियारे में छुपी होती है और यही कारण है कि किसी रूटीन सरकारी नोटिस को भी लोग संदेह की नज़रों से देखने लगते हैं. लेकिन कई बार ऐसा भी होता है, जब सरकार ख़ुद शंकाओं को आमंत्रित करती है. शायद इसी का परिणाम है कि करोड़ों रुपये के मधु कोड़ा घोटाला प्रकरण की जांच की अगुआई कर रहे शीर्ष आयकर अधिकारी को अचानक स्थानांतरित किया जाना लोगों को पच नहीं रहा है. मौजूदा हालात को देखते हुए सरकार के इस फ़ैसले पर आश्चर्य करना लाज़िमी भी है. आम धारणा के मुताबिक़, उज्जवल चौधरी जल्द ही राजनीतिज्ञों और घोटालेबाज़ों के बीच संपर्कों का ख़ुलासा करने वाले थे. कोड़ा घोटाला प्रकरण में केवल झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री ही आरोपी नहीं हैं, बल्कि कई अन्य नेता और उनके तलवे चाटने वाले नौकरशाहों की भी इसमें संलिप्तता है, क्योंकि काले धन के सूत्र दिल्ली सहित कई अन्य राज्यों तक फैले हैं.

आधिकारिक तौर पर अधिकारियों का तर्क है कि चौधरी का तबादला एक रूटीन का हिस्सा है और वह पटना में रहकर भी झारखंड पर नज़र रख सकते हैं. लेकिन यह तर्क किसी के गले नहीं उतर रहा. किसी महत्वपूर्ण मामले की जांच कर रहे आयकर अधिकारियों को विरले ही ऐसे मौक़ों पर स्थानांतरित किया जाता है और जब कभी ऐसा हुआ है तो उस पर उंगलियां उठी हैं. चौधरी के मामले में भी माना जा रहा है कि जी-जान से जांच में लगे अधिकारी के हट जाने से कई लोगों को फ़ायदा हो सकता है. और, जिस तरह कई बड़े राजनेता संदेह के घेरे में हैं, मामले की लीपापोती की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता.

नीलेकणी की तलाश जारी

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह द्वारा इंफोसिस के पूर्व अध्यक्ष नंदन नीलकेणी को यूनिक आइडेंटिफिकेशन अथॉरिटी ऑफ इंडिया(यूआईडीएआई) का मुखिया नियुक्त किए जाने के बाद इस महत्वाकांक्षी परियोजना की शुरुआत तो हो गई, लेकिन हम जैसे पत्रकार इससे ज़्यादा उत्साहित नहीं हैं. तमाम अनुमानों के विपरीत नीलेकणी ने घोषणा कर दी कि वह कॉरपोरेट दुनिया से जुड़े लोगों के बजाए आईएएस अधिकारियों को ज़िम्मेदारी वाले पदों पर रखना चाहेंगे. लेकिन, सूत्रों पर भरोसा करें तो यूआईडीएआई में खाली पदों को भरने के लिए उन्हें ख़ासी मशक़्क़त करनी पड़ रही है.

पता नहीं क्यों, इसकी शुरुआत के बाद से ही नौकरशाह यूपीए सरकार की इस महत्वाकांक्षी योजना से जुड़ने में ज़्यादा रुचि नहीं दिखा रहे. हो सकता है कि कॉरपोरेट दुनिया से जुड़े बॉस के काम करने के तरीक़े से वे डर रहे हों. कुछ लोगों का यह भी मानना है कि नौकरशाहों का यह वर्ग नीलेकणी के साथ एक बार काम करने के बाद मुख्यधारा में लौटने की उनकी संभावनाओं को लेकर आशंकित हो. अब वे कुछ भी सोच रहे हों, लेकिन प्रोजेक्ट का काम आगे बढ़ाने के लिए नीलेकणी को संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारियों की तलाश करनी ही होगी.

ठाकरे और पूरे देश को मूर्ख बनाया

पृष्ठ एक का शेष

ने बड़ी ख़ूबी से अंजाम दिया. स्टार ग्रुप के न्यूज चैनल देश के हर रीजन और भाषा में भी हैं. अख़बारों में भी इनकी साख है. इसके अलावा इस फ़िल्म के प्रचार के लिए टीवी चैनलों और अख़बारों में जमकर ख़र्च किया गया. विवाद खड़ा होते ही इन टीवी चैनलों और अख़बारों ने अपना फ़र्ज़ निभाया. इन टेलीविजन चैनलों, अख़बारों और रेडियो ने मुंबई की घटनाओं से जुड़ी ख़बरों को ऐसे दिखाया, जैसे कोई राष्ट्रीय संकट पैदा हो गया हो. यह संभव है कि टीवी चैनल एवं अख़बार प्रमोशन के इस ख़तरनाक खेल से अंजान हों और वे सिर्फ़ अपने व्यवसायिक हित के लिए ऐसा कर रहे हों. दरअसल, सटीक प्रोपेगंडा का उसूल ही यही है कि जो लोग इसमें शामिल होते हैं, उन्हें इस बात का पता ही न चले कि वे किसके लिए काम कर रहे हैं.

बड़े लोगों और छोटे लोगों में एक बुनियादी फ़र्क़ होता है. बड़े लोग बेवजह कुछ नहीं बोलते हैं. शिवसेना के हंगामे, महाराष्ट्र सरकार की सुरक्षा व्यवस्था के बीच मीडिया में बयानों की बौछार और खिचखिच के बीच 16 दिसंबर 2009 को शाहरुख़ ख़ान ने जो कहा, उस पर से लोगों का ध्यान हट गया. मीडिया ने शाहरुख़ ख़ान के बयानों को सही परिपेक्ष्य में देखा होता तो शायद सच्चाई पर से कुछ पर्दा उतर जाता. 16 दिसंबर 2009 को शाहरुख़, काजोल और करण जौहर माई नेम इज ख़ान के प्रमोशन के लिए मीडिया के सामने आए. शाहरुख़ से एक सवाल पूछा गया कि फ़िल्म रिलीज होने से पहले विवाद क्यों हो जाते हैं? जिस तरह आमिर फ़िल्म *थ्री इडियट्स* के लिए शहर-शहर जाकर प्रमोशन कर रहे हैं, जब आपकी फ़िल्म आएगी, तब आप क्या करेंगे?

शाहरुख़ ख़ान ने जवाब दिया कि अंदाज़ वही होगा, जो मेरा अंदाज़ है. तुझे देखा तो यह जाना सनम... कंट्रोवर्सी करना तो छिछोरापन होता है. हम फ़िल्म की पब्लिसिटी के लिए छिछोरापन नहीं करेंगे. हमारे प्रमोशन का अपना ही तरीक़ा होगा. इस प्रेस कांफ्रेंस में शाहरुख़ ने यह पहले ही ऐलान कर दिया था कि मुझे लगता है कि इस फ़िल्म का जादू *दिल वाले दुल्हनिया ले जाएंगे* से डेढ़ करोड़ गुना ज़्यादा चलेगा. हम तीनों जादूगर हैं. जब हम आएंगे, तब पूरी दुनिया देखेगी. फ़िल्म आ गई और दुनिया ने भी देख लिया. शाहरुख़ ने जिस अंदाज़ में यह बयान दिया, उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि फ़िल्म के प्रमोशन के लिए वह कुछ अलग और कुछ बड़ा करेंगे.

माई नेम इज ख़ान को इतिहास में एक अच्छी फ़िल्म की तरह नहीं, लेकिन शिवसेना और शाहरुख़ के विवाद के लिए जाना जाएगा. फ़िल्म रिलीज होने वाली थी. उससे पहले शाहरुख़ ख़ान का बयान आया कि आईपीएल में पाकिस्तानी खिलाड़ियों को मौक़ा मिलना चाहिए था. यह एक विचित्र स्थिति है. शाहरुख़ ख़ान ख़ुद आईपीएल की एक टीम कोलकाता नाइट राइडर्स के मालिक हैं. उन्होंने ख़ुद किसी पाकिस्तानी को नहीं चुना और बाद में उनके चुनाव के लिए मीडिया में बयानबाज़ी करने लगे. शाहरुख़ खान भले ही लोगों को शटअप कहने का अधिकार रखते हों, लेकिन उनसे यह सवाल पूछा जाना चाहिए कि पाकिस्तानी क्रिकेटरों के आईपीएल में न चुने जाने का उन्होंने विरोध तो किया, लेकिन अपनी ही टीम में किसी भी पाकिस्तानी खिलाड़ी को जगह क्यों नहीं दी.

इस पूरे विवाद में देश की जनता की भावनाओं से खिलवाड़ किया गया. जनता की इस परेशानी के बीच तीन ऐसे मोहरे थे, जिन्हें इस विवाद से भरपूर फ़ायदा हुआ शिवसेना, शाहरुख़-फॉक्स और कांग्रेस-एनसीपी सरकार. बाल ठाकरे पिछले कुछ दिनों से महाराष्ट्र की राजनीति के साइड हीरो बन चुके थे. कई महीनों से अख़बारों ने बाल ठाकरे के बारे में लिखना भी बंद कर दिया था. टीवी पर बाल ठाकरे दिखना बंद हो गए थे. बाल ठाकरे की जगह मराठा मानुष के नाम पर गुंडागर्दी करने का ज़िम्मा राज ठाकरे ने ले लिया. राज ठाकरे ने शिवसेना के मुद्दे को हथिया कर उनकी नींद उड़ा दी. लेकिन एक ही झटके में सब कुछ बदल गया. फ़िल्म माई नेम इज ख़ान की रिलीज के साथ ही वह अचानक केंद्र में आ आए. अख़बारों में बाल ठाकरे की तस्वीरें छपने लगीं. बाल ठाकरे द्वारा लिखे गए लेख टीवी चैनलों पर बार-बार दिखाए जाने लगे. शिवसेना पहली बार राज ठाकरे पर भारी दिखाई दी. यह सही है कि लोकसभा चुनाव और विधानसभा चुनाव हारने के बाद शिवसेना में मायूसी है. कार्यकर्ता निराश होकर राज ठाकरे की पार्टी की तरफ झुकने लगे थे. शिवसेना का वोटबैंक खिसकने लगा था. लोकसभा और विधानसभा में हारने के बाद बीएमसी का चुनाव सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है. फ़िलहाल इस पर शिवसेना और बीजेपी का क़ब्ज़ा है और वे इसे किसी भी सूरत में अपने हाथ से गंवाना नहीं चाहती हैं. माई नेम इज ख़ान विवाद ने शिवसेना के संगठन में जान डाल दी. इस विवाद के दौरान हुए हंगामे में 1500 से ज़्यादा कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए. तीन-चार दिनों तक वे जेल में रहे. और, जब वे बाहर निकले तो अपने-अपने इलाक़े में उनका जमकर स्वागत हुआ. फूल-मालाओं से और जुलूस निकाल कर लोगों ने इनका स्वागत किया. जेल गए शिवसैनिकों को सरकार के इस कदम से काफ़ी लोकप्रियता मिली और शिवसेना के संगठन को नई ऊर्जा. इसका असर यह है कि अब शिवसेना अपने वोटबैंक को बिखरने से बड़ी आसानी से बचा पाएगी. यही वजह है कि इस विवाद के दौरान राज ठाकरे शिवसेना पर ही हमला करते नज़र आए.

इस विवाद से सबसे ज़्यादा फ़ायदा शाहरुख़ ख़ान और स्टार-फॉक्स को हुआ. शाहरुख़ ख़ान ने यह साबित किया है कि फ़िल्म की मार्केटिंग और प्रमोशन करने में वह आमिर और सलमान जैसे दूसरे प्रतियोगी फ़िल्म स्टार से काफ़ी आगे हैं. टीवी चैनलों ने इस फ़िल्म की रिलीज को एक राष्ट्रीय पर्व बना दिया. शिवसैनिकों के बयान दिखाए जा रहे थे. न्यूज़ चैनलों पर बहस और लोगों की राय का सिलसिला फ़िल्म के हिट हो जाने तक चलता रहा. पुलिस का इंतजाम कैसा है, यह देखने के लिए टीवी चैनलों के कैमरों के सामने नेता, अधिकारी और मंत्रियों की लाइन लग गई. शाहरुख़ ख़ान की राहुल गांधी से नजदीकियां जगज़ाहिर हैं, इसलिए महाराष्ट्र के कांग्रेसी नेता और मंत्री लाइन में लगकर टिकट ख़रीदते दिखे. हर सिनेमाहाल के बाहर पुलिस का जमावड़ा था. शिवसैनिकों की पकड़-धकड़ न्यूज़ चैनलों में लगातार दिखाई गई. यह एक शर्मनाक स्थिति है कि माई नेम इज ख़ान विवाद ने ऐसा रूप अख्तियार कर लिया, जहां राज्य सरकार ने फिल्म को रिलीज और हिट कराने का ज़िम्मा अपने सिर ले लिया हो. हद तो तब हो गई, जब उप मुख्यमंत्री आर आर पाटिल ख़ुद फ़िल्म देखने थियेटर पहुंच गए. जिस हिसाब से कांग्रेस और एनसीपी की सरकार ने इस फ़िल्म को रिलीज कराने में अपनी सारी ताक़त झोंक दी. अगर ऐसी ही कोशिश ग़रीब टैक्सी वालों के लिए की गई होती, तो मुंबई की सड़कों पर बिहार एवं यूपी के टैक्सी ड्राइवर और परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों को दौड़ा-दौड़ाकर पीटा न गया होता. आर आर पाटिल साहब ने बिहार या यूपी वालों की टैक्सियों पर बैठने की ज़हमत क्यों नहीं उठाई?

देश के कई शहरों में ख़ौफ़ और आतंक का माहौल, दुनिया भर की मीडिया में खलबली, शिवसैनिकों का हंगामा, हिंदुस्तान-पाकिस्तान के नेताओं की बयानबाज़ी, राज्य के मुख्यमंत्री, गृहमंत्री और कई नेताओं का सड़क पर उतरना, कई शहरों में सुरक्षा व्यवस्था, 1500 से ज़्यादा लोगों की गिरफ़्तारी. इतनी सारी घटनाएं, तेज़ी से चला घटनाचक्र, सौ करोड़ का देश और इन्हें अपने जाल में फंसाने वाली अमेरिका की एक कंपनी, जिसने देश की बीस करोड़ से ज़्यादा मुस्लिम आबादी को भी अपने जाल में भावनात्मक रूप से फंसा उन्हें फ़िल्म देखने सिनेमाहाल में भेज दिया. आमतौर पर मुसलमान अमेरिका के ख़िलाफ़ हैं, लेकिन इस मसले में वे अमेरिकी कंपनी के जाल में फंसे और ख़ूब फंसे. पर अमेरिकी कंपनी फॉक्स ने जिस तरह रणनीति बनाई, उसके लिए उसकी तारीफ़ होनी चाहिए और भारतीयों को उसके जाल में फंसने के लिए अपना सिर पीटना चाहिए.

manish@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया
देश का पहला साप्ताहिक अख़बार

वर्ष 1 अंक 52,
दिल्ली, 8 मार्च-14 मार्च 2010

संपादक

संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय

के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ-2, सेक्टर -11, नोएडा
गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201301

फोन न.

संपादकीय 0120-4783999/11-23418962
विज्ञापन + 91 9873575318
प्रसार + 91 9810017924
फैक्स न. 0120-4783950

पृष्ठ-16 (+4)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनः प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

केंद्र की ओर से स्कूलों के लिए दो प्रमुख संस्थान सीबीएसई और आईसीएसई गठित किए गए, लेकिन कुछ राज्यों ने आज भी अपनी व्यवस्था क़ायम रखी हुई है.

शिक्षा का अधिकार

झूठ और सच का खेल

अंचल सिन्हा

शिक्षा मंत्री कपिल सिब्बल पहली अप्रैल से देश को शिक्षा का अधिकार देने जा रहे हैं. वह बार-बार कह रहे हैं कि उनकी मंशा शिक्षा व्यवस्था में आमूल बदलाव करने की है. बात सुनने में अच्छी और लुभावनी लगती है. जब बिहार में जेपी की अगुआई में आंदोलन चला था तो अन्य मांगों के अलावा एक प्रमुख मांग शिक्षा में आमूल परिवर्तन की भी थी. ऐसे में कपिल सिब्बल का यह कहना कि वह शिक्षा की पूरी व्यवस्था बदलने जा रहे हैं, सुनने में तो बड़ा अच्छा लगता है, पर सिब्बल जिन लोगों के साथ हैं, जिनके साथ उनका पूरा जीवन गुज़रा है, क्या वे उन्हें ऐसा करने देंगे? दरअसल आज़ादी के इतने वर्षों में देश की सभी सरकारों ने लगभग उसी ढर्रे पर काम किया है, जो अंग्रेज हमारे लिए छोड़ गए थे. इन तिरसठ वर्षों की आज़ादी में देश पर उसी कांग्रेस पार्टी का शासन रहा, जिसके नेतृत्व में आज़ादी की लड़ाई लड़ी गई थी. इससे देश के प्रति कांग्रेस पार्टी की ज़िम्मेवारी भी सबसे ज़्यादा बनती थी. पर हुआ इसका उल्टा. सत्ता में आने के बाद कांग्रेस के ज़्यादातर नेताओं ने देश से ज़्यादा अपनी परवाह की. शिक्षा उनके लिए कभी गंभीर विषय नहीं रहा. ख़ासतौर से बच्चों की शिक्षा को लेकर वे प्रयोग ही करते रहे, पर राज्य अपने हिसाब से शिक्षा नीति बनाता रहा. राज्यों ने अपने-अपने शिक्षा बोर्ड बनाए. केंद्र की ओर से स्कूलों के लिए दो प्रमुख संस्थान सीबीएसई और आईसीएसई गठित किए गए, लेकिन कुछ राज्यों ने आज भी अपनी व्यवस्था क़ायम रखी हुई है.

बिहार स्कूल परीक्षा समिति से बोर्ड परीक्षा पास करने वाले ग्यारहवीं की परीक्षा देते रहे हैं, जबकि उसी समय दिल्ली समेत अनेक राज्यों में लोग दसवीं में ही बोर्ड परीक्षा देते हैं. बाद में बिहार में भी लोगों ने केंद्र सरकार की सीबीएसई को अपनाना शुरू कर दिया. पर जिन्होंने अपने जीवन का एक वर्ष ज़्यादा दिया, वे तो वापस नहीं आएंगे? यह तो सिर्फ़ एक उदाहरण है. बच्चों के साथ देश और राज्यों के शिक्षा विभाग ने न जाने कितने प्रयोग किए. जाने कितने हंगामे के बाद लोगों ने प्रोफेशनल शिक्षा को अपनाया. इसके पहले हमें यह समझना होगा कि अपने देश में आज़ादी के बाद से शिक्षा की ऐसी व्यवस्था कर दी गई है, जिसमें शिक्षा से ज़्यादा उसके व्यवसाय पर ज़ोर रहता है. हाल में दिल्ली के एक स्कूल ने समाज के दो वर्गों के लिए दो तरह की व्यवस्था की घोषणा करके एक विवाद खड़ा कर दिया था. उसने अमीर लोगों के लिए वातानुकूलित और दूसरों के लिए सामान्य क्लासरूम की बात की थी. पहले तो इसे आम लोगों ने नज़रअंदाज़ किया, पर बाद में इस पर इतनी बयानबाज़ी हुई कि कपिल सिब्बल को हस्तक्षेप करना पड़ा.

अब सिब्बल ने कहा है कि वह सभी राज्य सरकारों से बात कर रहे हैं और मार्च महीने में इसके लिए आम सहमति बनाकर पहली अप्रैल से देश भर में लागू करा देंगे. सिब्बल के प्रस्ताव में देश भर में एक जैसे स्कूल की बात कही गई है. इसके पहले कोठारी कमीशन ने भी कुछ ऐसी ही अनुशंसाएं की थीं. पर उनके बारे में कोई गंभीर चर्चा तक नहीं की जा सकी. लेकिन अब जब इसे मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखा गया है, तो इसे लागू कराना किसी सरकार के लिए एक बड़ी उपलब्धि के रूप में माना जाना चाहिए.

पिछले वर्ष 20 जुलाई को जब केंद्र सरकार ने छह से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा का बिल राज्यसभा में पास किया तो लगा कि जैसे देश में एक तरह की क्रांति आ गई. लेकिन व्यवहार में इसका कितना फ़ायदा होगा, इसमें पूरा संदेह बना हुआ है. वर्ष 2002 में संविधान में संशोधन करने के बाद शिक्षा का बिल पहली बार संसद में लाया गया, लेकिन एनडीए के शासनकाल में इस पर केवल बहस ही होती रही और ख़र्चे का बहाना बनाकर इसे लटकाने की पूरी कोशिश की गई. उसके बाद यूपीए के पहले शासनकाल में कांग्रेस ने इस पर चुप्पी साधे रखी और वही बहाना बनाया. अब यूपीए की दूसरी पारी में कपिल सिब्बल ने इसे देश भर में लागू करने की बात चलाकर हवा में थोड़ी ऊर्जा तो भर ही दी है, लेकिन बिना अधिसूचना जारी किए उनकी बात का मतलब क्या है.

इसे लागू होने का सबसे बड़ा फ़ायदा शिक्षक समुदाय को होना है, क्योंकि उसके बाद शिक्षक और छात्रों का अनुपात आज के 1:90 की जगह 1:30 होना है. इससे शिक्षकों की बहाली का रास्ता भी खुलने वाला है. इसके लिए सरकार को सात लाख अप्रशिक्षित और 12 लाख प्रशिक्षित शिक्षकों को बहाल करना होगा. अभी देश के 29 में से 13 राज्यों में ही शिक्षकों की पर्याप्त संख्या है. अनुमान है कि इसे लागू करने में 1.78 लाख करोड़ रुपये का ख़र्चा आएगा, जिसे केंद्र और राज्य सरकारों को मिलकर पूरा करना है. नए नियम की धारा 29 के अनुसार, पढ़ाई के अलावा परीक्षा पद्धति में भी संशोधन किया जाना है. लेकिन यूपीए सरकार यह तय नहीं कर सकी है कि उसके सर्व शिक्षा अभियान वाले कार्यक्रम से नई प्रस्तावित शिक्षा व्यवस्था को कैसे संबद्ध किया जाएगा.

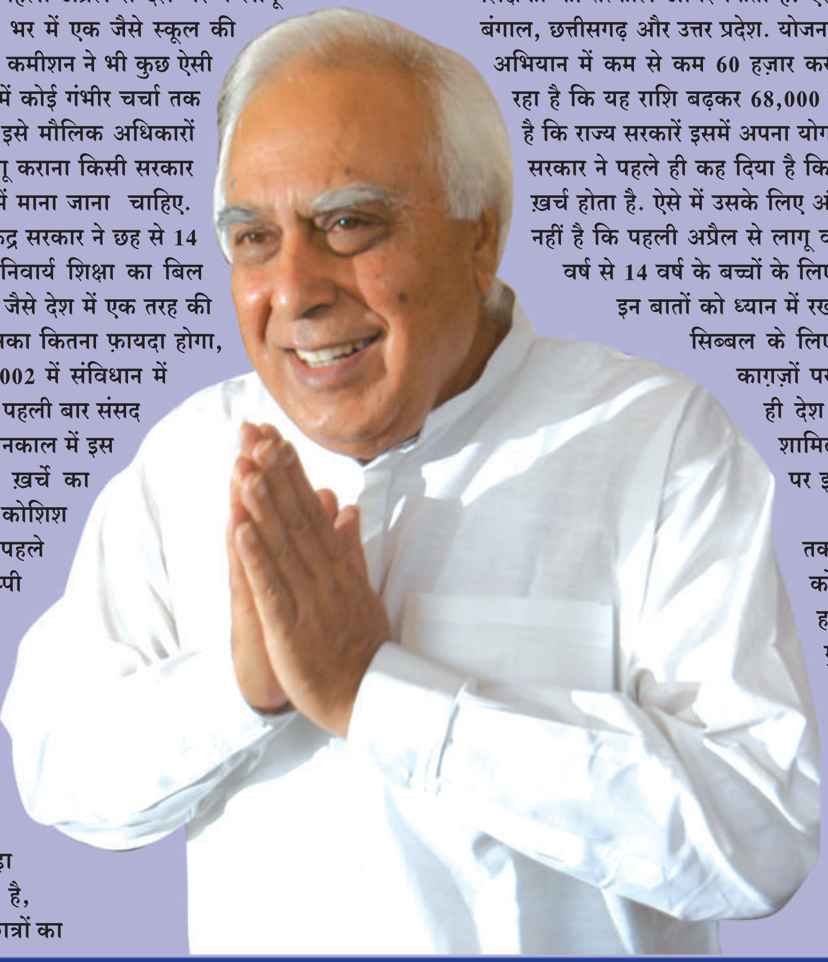

सबसे ज़्यादा परेशानी बिहार जैसे राज्यों में है. यहां कम से कम पांच लाख अप्रशिक्षित शिक्षकों की तत्काल आवश्यकता है. ऐसे ही कुछ अन्य राज्यों के नाम हैं असम, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश. योजना आयोग की मानें तो अकेले सरकार के सर्व शिक्षा अभियान में कम से कम 60 हज़ार करोड़ रुपये का प्रावधान किया जाना है. माना जा रहा है कि यह राशि बढ़कर 68,000 करोड़ रुपये हो जाएगी. केंद्र सरकार को आशंका है कि राज्य सरकारें इसमें अपना योगदान कैसे और कितना कर पाएंगी, क्योंकि बिहार सरकार ने पहले ही कह दिया है कि उसके बजट का 25 फ़ीसदी हिस्सा शिक्षा पर ही ख़र्च होता है. ऐसे में उसके लिए और ज़्यादा पैसा जुगाड़ करना आसान नहीं है. ऐसा नहीं है कि पहली अप्रैल से लागू व्यवस्था से देश में कोई क्रांति हो जाएगी, पर छह वर्ष से 14 वर्ष के बच्चों के लिए उनकी मूल शिक्षा का एक रास्ता तो खुलेगा ही.

इन बातों को ध्यान में रखकर यदि हम विश्लेषण करें तो पाएंगे कि कपिल सिब्बल के लिए इसे लागू करा लेना उतना आसान नहीं होगा. काग़ज़ों पर तो सरकार घोषणा कर सकती है कि कांग्रेस ने ही देश के बच्चों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार में शामिल किया, पर डर यह है कि आर्थिक बोझ के नाम पर इसे व्यवहार में टरकाने का प्रयास किया जाए.

आज़ादी के इन 63 बरसों के बाद भी हम आज तक यह तय नहीं कर पा रहे हैं कि देश के नौनिहालों को कैसे और कैसी शिक्षा दें. असल में आज भी हम हज़ारों रुपये ख़र्च करके जो शिक्षा अपने बच्चों को मुहैया करा पा रहे हैं, वह उन्हें बस्तों के बोझ के अलावा क्या सिखा पाती है. हम बच्चों को जिस व्यवस्था में स्कूल में डालते हैं, उसमें वह पहले दिन से अमीर-ग़रीब को पहचानने लगता है. इसके कारण जो दंभ उसके मन में पैदा होता है, वह उसे नैतिकता की किसी भी परिभाषा में फिट नहीं बैठने देता. क्या कपिल सिब्बल इसके बारे में भी कोई रास्ता तलाश रहे हैं?

feedback@chauthiduniya.com

SAVE CASH FOR YOUR BUSINESS | USE BARTER

We are one of the worlds leading Barter Exchange Company operating out of India, Australia, New Zealand and Costa Rica, servicing over 5000 member businesses worldwide

In India, BBX works with more than 600 businesses and professionals from a wide spectrum of industries, facilitating Cashless Trade and creating New Business Opportunities

BBX now invites **Franchisees** from different parts of the country to be a part of this unique business opportunity

To know more, please contact:
Sachin at 9871531759 or 40587777
or email us at info@ebbx.in

BBX

BBX India Pvt. Ltd.
E-8, 2nd Floor, Kalkaji, New Delhi 19
011 - 4058 7777 | info@ebbx.in | www.ebbx.in
INDIA | AUSTRALIA | NEW ZEALAND | COSTA RICA

माओवादियों के हमले रुके नहीं हैं. 22 फरवरी को माओवादियों ने पुरुलिया ज़िले के बांदवान में दो माकपा कॉडरों की हत्या कर दी.

माओवादी बंदूक़ की नोक पर बात करना चाहते हैं

देश के चार राज्यों–पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड और उड़ीसा में शुरू होने वाले ऑपरेशन ग्रीन हंट के मद्देनजर माओवादियों ने नया रुख अख्तियार किया है. उन्होंने केंद्र सरकार के 72 घंटे के युद्ध विराम प्रस्ताव के जवाब में 72 दिनों के युद्ध विराम का प्रस्ताव किया है. लेकिन, इसे उनकी एक रणनीति के तौर पर देखा जा रहा है.

बिमल राय

अगर माओवादी आदिवासियों का हित चाहते हैं तो उनकी बस्तियों में अमन का होना भी ज़रूरी है, क्योंकि इसके बिना कोई विकास कार्य नहीं किया जा सकता. क्रॉस फायरिंग के माहौल में सड़क या पुल बनाने का काम नहीं हो सकता. माओवादी नेताओं को यह ज़मीनी हक़ीक़त समझनी होगी और सरकार को भी नई सोच के साथ आदिवासियों के कल्याण के लिए लगना होगा. माओवादी मुख में राम–बगल में छुरी वाली कहावत पर चल रहे हैं. ऑपरेशन ग्रीन हंट शुरू किए जाने से घबरा कर संगठन के मुखिया किशन जी ने बातचीत का प्रस्ताव रखा है, पर हमले अभी रुके नहीं हैं और न दोनों पक्षों के बीच विश्वास का माहौल बना है. केंद्र के 72 घंटे के युद्ध विराम के प्रस्ताव के बदले किशन जी ने 72 दिन के युद्ध विराम का प्रस्ताव भेजा है, पर किसी को उनकी नीयत पर यक़ीन नहीं हो रहा है. यह समझा जा रहा है कि खुद को फिर से संगठित करने और हथियार जुटाने के लिए ही माओवादी समय ले रहे हैं. दूसरी बात यह कि बातचीत के प्रस्ताव पर भी माओवादियों के बीच मतभेद हैं. एक गुट ऑपरेशन ग्रीन हंट के सशस्त्र मुक़ाबले के पक्ष में हैं तो किशन जी की अगुआई वाला दूसरा गुट बातचीत के पक्ष में है. वार्ता के प्रस्ताव पर आम सहमति अपनाने वाले मामले पर भी माओवादी नेताओं के बीच दो दिन तक विचार हुआ. वार्ता का प्रस्ताव आते ही तृणमूल के बागी सांसद एवं गायक कबीर सुमन ने मध्यस्थता का प्रस्ताव भी रख दिया. हालांकि चिदंबरम ने मंत्रालय का फैक्स नंबर भेजकर सीधी वार्ता का लिखित आवेदन भेजने को कहा और इस तरह किसी तीसरे पक्ष के दख़ल का रास्ता बंद हो गया है.

ऑपरेशन ग्रीन हंट चार राज्यों–पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड और उड़ीसा में शुरू होने वाला है, इसलिए बातचीत के प्रस्ताव पर चारों राज्यों की ओर से प्रतिक्रिया आई है. झारखंड के उप मुख्यमंत्री सुदेश महतो ने युद्ध विराम का स्वागत किया है, जबकि माओवादियों की हिंसक कार्रवाइयों को देखते हुए नवीन पटनायक प्रशासन कोई उम्मीद पालने के पक्ष में नहीं है. बिहार ने यह कहकर मामला लटका दिया है कि किशन जी ने बिहार का नाम नहीं लिया है. चुनावी साल होने के कारण नीतीश कुमार भी फूंक–फूंककर क़दम रख रहे हैं. इसी रणनीति के तहत उन्होंने कोलकाता में गृहमंत्री पी चिदंबरम द्वारा बुलाई गई मुख्यमंत्रियों की बैठक में हिस्सा नहीं लिया. इस मसले पर होने वाली दूसरी बैठक में भी उनके शिरकत करने की उम्मीद नहीं है. कुछ ऐसा ही हाल झारखंड के मुख्यमंत्री शिबू सोरेन का था, पर बीडीओ अपहरण कांड के बाद उनका भी रुख़ गरम हो गया है.

हिंसा रोकने की बात कहने के बाद भी माओवादियों के हमले रुके नहीं हैं. 22 फरवरी को माओवादियों ने पुरुलिया ज़िले के बांदवान में दो माकपा कॉडरों की हत्या कर दी और 23 जनवरी को लालगढ़ में सीआरपीएफ के कैंप पर कथित रूप से हमला किया. हालांकि सुरक्षाबलों की गोली से तीन माओवादियों के मारे जाने की ख़बर मिली. इनमें से एक पुलिस अत्याचार के ख़िलाफ़ बनी संघर्ष समिति के अध्यक्ष लालमोहन टुडू थे. छत्रधर महतो को पकड़े जाने के बाद टुडू को ही संगठन का भार दिया गया था. आरोप है कि सुरक्षाबलों ने उन्हें घर से उठाने के बाद कांटा पहाड़ी में गोली मारकर मुठभेड़ का नाम दे दिया. इसके विरोध में माओवादियों ने 28 फरवरी को चार राज्यों में बंद का पालन किया. पुलिस को उम्मीद है कि टुडू के मारे जाने से माओवादियों और आदिवासियों के बीच दूरी पैदा होगी. प्रशासन के ख़िलाफ़ रैलियों में अब उतनी भीड़ नहीं होती, जितनी छत्रधर के समय होती थी.

पश्चिमी रेंज के आईजी और माओवादियों के ख़िलाफ़ अभियान की अगुआई कर रहे कुलदीप सिंह ने चौथी दुनिया को बताया कि माओवादियों के ख़िलाफ़ हमारा अब तक का अभियान सफल रहा है और विभिन्न सुरक्षा एजेंसियों एवं पुलिस के बीच पूरा तालमेल है. सिलदा कैंप पर हुए हमले के संबंध में उन्होंने कहा कि इसे दोहराया न जा सके, इसलिए शिविरों की सुरक्षा व्यवस्था और बढ़ा दी गई है तथा माओवादियों द्वारा छीने गए हथियारों की बरामदगी के लिए तलाशी अभियान चलाया जा रहा है. हालांकि 15 फरवरी को सिलदा के ईस्टर्न फ्रंटियर राइफल्स के शिविर पर हमले के मामले से सुरक्षा एजेंसियों और पुलिस के बीच तालमेल की कमी पूरी तरह उजागर हो गई है. अभियान के संबंध में प्रशासनिक मतभेद भी उभर कर सामने आ गए. गृह सचिव अर्द्धेंदु सेन और पुलिस महानिदेशक भूपिंदर सिंह के बीच मतभेद दिखा. हमले के एक दिन बाद गृह सचिव ने कहा कि इस बात की जांच की जाएगी कि हमले के संबंध में तीन घंटे पहले सूचना मिलने के बावजूद चूक कहां हुई और जो अफ़सर दोषी होगा, उसे सजा मिलेगी. इधर भूपिंदर सिंह ने पुलिस का बचाव करते हुए कहा कि इसके लिए कुछ अफ़सरों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि कैंप के जवानों को हर दिन सावधान रहने की हिदायत देने की ज़रूरत नहीं होती. उन्होंने माना कि इस तरह के शिविरों पर हमले की आशंका हर समय है, पर सिलदा कैंप पर हमले के संबंध में कोई अग्रिम सूचना नहीं थी. मालूम हो कि इसके पहले पीराकाटा कैंप पर भी माओवादियों का हमला हुआ था, पर जवानों ने अपनी जवाबी कार्रवाई से उन्हें पीछे हटने पर मजबूर कर दिया था. हालांकि दोनों पक्षों ने इस बात को मान लिया कि इस कैंप की जगह ग़लत थी. इसके साथ ही जंगल महल के सारे कैंपों की सुरक्षा के पहलू की समीक्षा की जा रही है. सिलदा में हमला इसलिए संभव हुआ कि वह एक व्यस्त बाज़ार के बीचोबीच लगा था. माओवादी दोपहर से ही जमा होने लगे थे और वे आम जनता में घुल–मिल गए. बताया जाता है कि माओवादियों ने आधा घंटा पहले दुकानें बंद करा दीं.

लालगढ़ अभियान में तब एक नया मोड़ आया, जब ईस्टर्न फ्रंटियर राइफल्स के स्पेशल आईजी विनय कृष्ण चक्रवर्ती ने चेहरे पर काला नक़ाब पहनकर प्रेस कांफ्रेंस की और सिलदा कैंप पर हमले के संबंध में पश्चिम मिदनापुर के एसपी मनोज वर्मा को खरी–खोटी सुनाई. गृह सचिव ने माना कि उनका प्रेस कांफ्रेंस करना सर्विस नियम के तहत नहीं है. सरकार ने तो पहले उन्हें निलंबित करने की बात कही, पर सिलदा कैंप में मारे गए जवानों के परिजनों ने उनके पक्ष में जुलूस निकाला तो सरकार ने उन्हें सिर्फ़ कारण बताओ नोटिस जारी किया. हालांकि सिलदा कैंप पर हमले की रिपोर्ट के लिए दो महीने का समय निर्धारित होने से साफ़ लग रहा है कि सरकार किसी को बलि का बकरा बनाने के पक्ष में नहीं है.

सुरक्षाबलों ने अब माओवादियों को पकड़ने की नहीं, बल्कि उनके ख़ात्मे की रणनीति बनाई है. इसलिए माओवादी कॉडर छिपने के लिए सुरक्षित स्थानों की तलाश कर रहे हैं. जून 2009 में लालगढ़ ऑपरेशन शुरू होने के बाद से राज्य के कुछ आईपीएस अधिकारी माओवादियों से निपटने के लिए आंध्र प्रदेश और छत्तीसगढ़ मॉडल को अपनाने पर ज़ोर देते रहे हैं. हालांकि सिलदा हिंसा के बाद सरकार ने कड़ाई बरतने को हरी झंडी दे दी है. पश्चिम बंगाल में ऑपरेशन ग्रीन हंट मुख्यतः तीन ज़िलों–पश्चिम मिदनापुर, बांकुड़ा एवं पुरुलिया में शुरू होने वाला है और माओवादियों की रणनीति आसपास के ज़िलों में छिपने की है. वे नदिया, मुर्शिदाबाद, वीरभूम और मालदा ज़िलों में अड्डे बनाने की फिराक़ में हैं. ख़ुफ़िया सूत्रों के मुताबिक़, नदिया को छोड़कर बाक़ी तीन ज़िलों की सीमाएं झारखंड से लगती हैं और ख़तरा महसूस होने पर कॉडर झारखंड में भी शरण ले सकते हैं. हाल में मुर्शिदाबाद से भी कुछ माओवादियों को पकड़ा गया है. क़रीब छह माह पहले मालदा के युवक सुशांत मुर्मू को लालगढ़ के भीमपुर में पकड़ा गया था.

राज्यों में अलग–अलग कार्रवाइयों के जरिए माओवादियों से निपटने में पूरी कामयाबी नहीं मिल रही थी, क्योंकि कॉडरों के एक राज्य में वारदात कर दूसरे राज्य में छिपने की रणनीति बाधक बनी हुई थी, पर ऑपरेशन ग्रीन हंट में इस तरह के किसी आवागमन का कोई प्रावधान नहीं बचेगा, क्योंकि ऑपरेशन नक्सल प्रभावित चार राज्यों में एक साथ शुरू होने वाला है.

नक्सलियों ने 72 दिन के युद्ध विराम का ऐलान किया है. अच्छा होता कि वे चुपचाप बिना कोई शर्त रखे वार्ता की मेज पर बैठते और कम से कम 372 दिन के युद्ध विराम की घोषणा करते. इस दौरान यह भी देखना संभव होता कि प्रभावित क्षेत्र की जनता की भलाई के लिए केंद्र व राज्य सरकारें क्या–क्या क़दम उठा रही हैं.

feedback@chauthiduniya.com

हाल की कुछ प्रमुख नक्सली घटनाएं

17 फरवरी, 2010	:	बिहार के जमुई ज़िले में माओवादी हमले में कम से कम 10 लोगों की हत्या.
15 फरवरी, 2010	:	पश्चिम बंगाल के पश्चिमी मिदनापुर ज़िला स्थित ईस्टर्न फ्रंटियर राइफल्स के सिल्दा कैंप पर हमले में 24 जवानों की मौत.
9 फरवरी, 2010	:	बिहार में नवादा ज़िले के महुलियाटांड गांव में नक्सलियों के हमले में कम से कम आठ पुलिसकर्मियों की हत्या.
7 अक्टूबर, 2009	:	महाराष्ट्र के गढ़ चिरौली में पुलिस पार्टी पर हमला कर 18 जवानों की हत्या.
1 अक्टूबर, 2009	:	बिहार के खगड़िया ज़िले में पांच बच्चों समेत 16 लोगों की मौत.
30 सितंबर, 2009	:	झारखंड में नक्सलियों ने राज्य पुलिस की स्पेशल ब्रांच के इंस्पेक्टर फ्रांसिस इंदुवर को अगवा किया और फिर गला रेत कर उनकी हत्या कर दी.
10 मई, 2009	:	छत्तीसगढ़ के धमतरी ज़िले में गुरिल्ला हमले में 13 लोगों की हत्या.
22 अप्रैल, 2009	:	आम चुनावों के दूसरे चरण से एक दिन पहले बिहार और झारखंड में पांच विभिन्न जगहों पर हमले, कई लोगों की हत्या.
16 अप्रैल, 2009	:	लोकसभा चुनावों के पहले चरण के मतदान में बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में अलग–अलग स्थानों पर 18 लोगों की हत्या.
11 अप्रैल, 2009	:	उड़ीसा के कोरापुट ज़िला में नाल्को प्लांट पर हमले में सीआरपीएफ के छह जवानों सहित कई मज़दूरों की हत्या.

जो बोलेगा, सो झेलेगा

आदियोग

हिंदी के मशहूर लेखक एवं नाटककार मुद्राराक्षस बेहद गुस्से में थे. आक्रामक मुद्रा और तीखे स्वरों में लगभग चीखते हुए उन्होंने सवाल किया कि यह देश किसका है, किसके लिए है. हत्यारे, लुटेरे, बलात्कारी, दलाल, तस्कर खुलेआम घूम रहे हैं. मुसलमानों का क़त्लेआम कराने वाला आदमी गुजरात का मुख्यमंत्री है. बाल ठाकरे मुसलमानों की हत्या किए जाने की लगातार अपील करता है और केंद्रीय मंत्री बेशर्म होकर उसके दरवाज़े मत्था टेकने पहुंच जाता है. लेकिन जो इस देश और देश की जनता को बचाने के लिए जुटते हैं, उन्हें देशद्रोही की कतार में खड़ा कर दिया जाता है.

मुद्राराक्षस दुबले–पतले और छोटे क़द के हैं, लेकिन साहित्य और संस्कृति की दुनिया में उतने ही वज़नदार और कद्दावर हैं. विवादास्पद हो जाने की हदों की कतई परवाह नहीं करते और अपनी राय बेबाकी से रखते हैं. उम्र के सातवें दशक में ज़रूर हैं, लेकिन पस्ती से कोसों दूर नज़र आते हैं और फ़िलहाल अपने ताज़ा नाटक की तैयारी में व्यस्त हैं. तो भी पिछली 13 फरवरी को वह लखनऊ के शहीद स्मारक पर तीन घंटे डटे रहे. बोले कि जो उथल–पुथल नेपाल में हुई, उसे इस देश में भी होना चाहिए. वरना इस देश का कबाड़ा निकल जाएगा. सरकारें अपनी ही जनता के ख़िलाफ़ खड़ी हो गई हैं. हालात आप–ातकाल से भी ज़्यादा ख़तरनाक हो गए हैं. ऐसे में कलमकारों और कलाकारों की बड़ी भूमिका बनती है.

महान फ्रांसीसी लेखक–दार्शनिक ज्यां पाल सार्त्र के शब्दों को दोहराते हुए मुद्राराक्षस ने चुनौती भरे अंदाज़ में ऐलान किया कि यूं तो हमारे शब्द बुलेट ही हैं, लेकिन हम बुलेट का भी इस्तेमाल कर सकते हैं. हमें इसलिए लिखना है, ताकि जो लड़ रहे हैं, उनका भरोसा न टूटे. बदलाव का इतिहास रचने के लिए लड़ाई में उतरना ज़रूरी है. जो भी इस लड़ाई में है, हम उसके साथ हैं. इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उनके हाथों में नारे की तख्ती है या बंदूक़. यह ऐतिहासिक पाप होगा, अगर हम चुप रहे. मुद्राराक्षस ने अपने वक्तव्य का समापन बरसों बाद सुने गए इस नारे के साथ किया –आमार नाम, तोमार नाम, वियतनाम. आमार बाड़ी नक्सलबाड़ी–नक्सलबाड़ी.

यह दृश्य था सीमा आज़ाद की गिरफ़्तारी के ख़िलाफ़ मानवाधिकार संगठन पीयूसीएल की उत्तर प्रदेश इकाई द्वारा आयोजित धरने का. यह आयोजन ख़ुद में एक वक्तव्य था कि राज्य के दमन के ख़िलाफ़ राजधानी के साहित्यकार, संस्कृतिकर्मी एवं सामाजिक कार्यकर्ता एकजुट हैं और लंबी लड़ाई के लिए तैयार हैं. आयोजन में चर्चित सीमा आज़ाद इलाहाबाद की हैं और पीयूसीएल की सक्रिय कार्यकर्ता रही हैं. ज़्यादातर अख़बारों को जनता के हित–अधिकारों से जुड़े सवालों पर ग़ौर करने की फुर्सत नहीं मिलती. ऐसे में सीमा आज़ाद ने लेखन को अपना हथियार बनाया. सामाजिक–आर्थिक और राजनैतिक हलचलों की चीरफाड़ करने के लिए दस्तक नाम से लघु पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया और जिसके ज़रिए वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के ख़िलाफ़ मोर्चा खोला. हिंदुस्तान का मैनचेस्टर कहे जाने वाले कानपुर की औद्योगिक दुर्दशा और उसके लिए ज़िम्मेदार सरकारी नीतियों को लेकर पुस्तिका तैयार की. राज्य सरकार की गंगा एक्सप्रेस वे नामक उस महत्वाकांक्षी परियोजना के ख़िलाफ़ भी पुस्तिका लिखी, जिसके पूरा होने की क़ीमत हज़ारों–हज़ार लोगों को विस्थापन से चुकानी होगी. और, अभी हाल में उन्होंने ऑपरेशन ग्रीन हंट को लेकर आए चुनिंदा लेखों का संकलन–संपादन करने का संगीन गुनाह कर डाला था.

वह पुस्तक मेले में भाग लेने के लिए नई दिल्ली गई थीं और छह फरवरी को इलाहाबाद लौट रही थीं कि बीच रास्ते में उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया. उनके पति विश्वविजय भी धर दबोचे गए. पुलिस ने छात्रों के बीच काम कर रहे विश्वविजय को सीपीआई माओवादियों का राज्य सरगना और सीमा आज़ाद को इस प्रतिबंधित संगठन की सक्रिय कार्यकर्ता के तौर पर पेश कर दिया. कहा गया कि दोनों प्रदेश में माओवाद की ज़मीन तैयार करने में जुटे थे. इसके ठीक दूसरे दिन कानपुर की ग़रीब बस्तियों में लोगों को जगाने और एकजुट करने में लगे आठ युवकों को भी पुलिस ने माओवादी का ठप्पा लगाकर गिरफ़्तार कर लिया. इनमें से एक वंशीधर सिंह चिंतक जेएनयू से डॉक्ट्रेट की उपाधि हासिल कर चुके हैं और अपने उपनाम को सार्थक करते हुए तमाम सवालों और मुद्दों पर बहस छेड़ने का काम करते रहे हैं.

बहरहाल, सीमा आज़ाद की गिरफ़्तारी माओवादियों को उखाड़ फेंकने के नाम पर प्रदेश में की गई पहली कार्रवाई है. मतलब कि अब उत्तर प्रदेश की सरकार भी लोकतांत्रिक और मानव अधिकारों की आवाज़ों को रौंदने के लिए छत्तीसगढ़ और उड़ीसा सरकार द्वारा आज़माए जा रहे नुस्ख़े पर अमल करने का मन बना चुकी है. उसे चिंता नहीं कि राज्य में अपराधियों का सिक्का चलने लगा है. चिंता हो भी तो कैसे, ख़ुद सत्तारूढ़ पार्टी अपराधियों की पनाहगाह में तब्दील हो गई है. जो बसपा में आए, दूध का धुला हो जाए. याद नहीं कि पिछले लोकसभा चुनाव में मुख्तार अंसारी को ग़रीबों का मसीहा करार देते हुए मुख्यमंत्री जी की जीभ तनिक नहीं लड़खड़ाई थी. हालांकि कौन नहीं जानता कि उसकी पहचान माफ़िया की है.

संयोग से मुख्यमंत्री मायावती महिला भी हैं और दलित भी. सर्वजन हिताय दूर की कौड़ी है, यहां तो बहुजन हिताय की ही ख़ैर नहीं. क्या संयोग है कि उनके राज में दलितों और ख़ासकर दलित महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों ने पिछले सभी रिकॉर्ड तोड़ देने का कीर्तिमान स्थापित किया है. संयोग यह भी है कि मुख्यमंत्री को ख़ुद को दलित की बेटी कहने–कहलाने में गर्व महसूस होता है. और, यह भी संयोग है कि भले ही राज्य के तमाम गांव आज भी ढिबरी–लालटेन के युग में जी रहे हों और मिट्टी के तेल की किल्लत इसमें भी बाधक हो, लेकिन उनके जन्मदिन पर राजधानी नीली रोशनी में नहा उठती है और वैभव का साम्राज्य खिल उठता है. गोया राजशाही वापस लौटआई हो.

महान फ्रांसीसी लेखक-दार्शनिक ज्यां पाल सार्त्र के शब्दों को दोहराते हुए मुद्राराक्षस ने चुनौती भरे अंदाज़ में ऐलान किया कि यूं तो हमारे शब्द बुलेट ही हैं, लेकिन हम बुलेट का भी इस्तेमाल कर सकते हैं. हमें इसलिए लिखना है, ताकि जो लड़ रहे हैं, उनका भरोसा न टूटे.

नाक में दम कर रहे सवालों से आजिज आकर कोई दो माह पहले केंद्रीय गृहमंत्री पी चिदंबरम ने ऑपरेशन ग्रीन हंट के नामकरण को मीडिया की कल्पना का कमाल बताकर असली सवालों से पीछा छुड़ाने की फिज़ूल कोशिश की थी. नाम जो भी दिया जाए या उसे बेनाम रखा जाए, आख़िर तो ताक़त की सरकारी नुमाइश घोषित तौर पर माओवादियों का सफाया अभियान है. और, जैसा कि माओवादी नेता भी कह चुके हैं कि अघोषित तौर पर यह दरअसल कॉरपोरेट जगत की राह में रोड़ा बन रहे आदिवासियों को उनकी ज़मीन से खदेड़ देने का अभियान है. भले ही प्रधानमंत्री न जाने कितनी बार माओवादियों को देश के लिए सबसे बड़ा ख़तरा बता चुके हों, लेकिन उन्हें यह भी मानना पड़ा कि आदिवासियों के साथ अब तक किए गए सौतेले बर्ताव ने माओवाद को हवा देने में सबसे बड़ी भूमिका अदा की है. चिदंबरम साहब भी थोड़ा पलटे कि अगर माओवादी युद्ध विराम करें, तो वह 72 घंटे के भीतर कंपनियों के साथ अब तक किए गए करारों को स्थगित करने और उस पर दोबारा विचार करने के लिए तैयार हैं. यह सरकारी क़बूलनामा है कि माओवाद विरोधी अभियान या माओवादी उभार आख़िर क्यों हो रहा है. योजना आयोग द्वारा गठित विशेष कार्यदल की रिपोर्ट भी तो इसी सच का बयान है.

ऑपरेशन ग्रीन हंट माओवाद प्रभावित पांच राज्यों पर केंद्रित है, लेकिन उसकी सबसे ज़्यादा तपिश छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा ज़िले में महसूस की गई. ऑपरेशन ग्रीन हंट की आहट से बहुत पहले साढ़े छह सौ से अधिक गांव वीरान कर दिए गए. आदिवासियों को सबक सिखाने के लिए उन पर हत्या, बलात्कार, लूट, आगजनी जैसे घिनौने और वहशी तरीक़े आज़माए गए. लोकतांत्रिक और मानव अधिकारों के पक्ष में उठी–जुटी आवाज़ों को ख़ौफ़ और दहशत की चाबुक से हड़काया और खदेड़ा गया. ज़िले को सत्ता की निरंकुश ताक़त की आज़माइश की प्रयोगशाला में बदल दिया गया. इसके लिए देश की सबसे बड़ी अदालत तक के आद–ेशों की ऐसी–तैसी कर दी गई.

तमिलनाडु के सलेम ज़िले के पीयूष सेठिया पर्यावरणीय कार्यकर्ता और खेती के परंपरागत तरीक़ों के पैरोकार के तौर पर जाने जाते हैं. दंतेवाड़ा की ख़बरों ने उन्हें विचलित कर दिया. दु:ख और क्षोभ ने उन्हें सलेम से पी चिदंबरम के निर्वाचन क्षेत्र सिवागांगई तक की साइकिल यात्रा का कार्यक्रम करने को मजबूर कर दिया. यात्रा की शुरुआत गुजरी 26 जनवरी से होनी थी. इस तारीख़ का ऐतिहासिक और प्रतीकात्मक महत्व है. इस बहाने इरादा यह सवाल उठाने का था कि आज़ाद भारत में गणतंत्र आख़िर किस हालत और हैसियत में है और कि इस उल्टे हालात में इस राष्ट्रीय पर्व का मनाया जाना कितना जायज़ है.

लेकिन अभी यात्रा बस शुरू होने वाली थी कि उन्हें अपने सहयात्री के साथ घेर लिया गया. उनकी एक नहीं सुनी गई. यात्रा के लिए तैयार किया गया परचा आपत्तिजनक माना गया और उन्हें देशद्रोह के इल्ज़ाम में गिरफ़्तार कर लिया गया. परचे में कहा गया था कि गणतंत्र इसलिए है, ताकि सरकार लोकतंत्र की इज़्ज़त और हिफाज़त के लिए अपनी कटिबद्धता दोहरा सके. लेकिन दंतेवाड़ा के आदिवासियों के लिए इसकी कोई गारंटी नहीं. जनता के संविधान प्रदत्त अधिकार कहां हैं? क्या भारत सरकार का मक़सद केवल टाटा, इस्सर और वेदांता जैसी कंपनियों को आदिवासियों की ज़मीन सौंपना भर है? ऐसे समय में जब किसान आत्महत्या के ज़रिए अपनी समस्याएं उठा रहे हैं, उनसे उनकी ज़मीन छीनकर उसे धनवानों के हवाले किया जा रहा है. क्या विकास का यही चेहरा है? इसके ख़िलाफ़ हम आवाज़ उठाते रहेंगे. परचे में भारत सरकार से तत्काल युद्ध रोकने की भी मांग की गई थी.

एक तरफ़ पी चिदंबरम माओवादियों को बातचीत के लिए न्यौता दे रहे हैं और दूसरी तरफ़ माओवादियों के ख़िलाफ़ युद्ध का बिगुल भी तेज़ करते जा रहे हैं. यह तो दोमुंहापन है. बातचीत का राग अलापो और साथ ही जो सवाल उठाने की ज़ुर्रत करे, उसे माओवादी बताकर मार गिराओ या फ़र्ज़ी मुक़दमों में फंसाओ या फिर जेल की हवा खिलाओ. ख़ैर, शुक्र है कि पीयूष सेठिया गुजरी 15 फरवरी को जमानत पर रिहा कर दिए गए.

लेकिन उत्तराखंड के प्रशांत राही ख़ुशकिस्मत नहीं रहे. वह दिसंबर 2007 से जेल में हैं. कभी वह अंग्रेजी दैनिक द स्टेट्समैन के राज्य प्रतिनिधि थे. वह बदलाव के पक्षधर थे और उन समुदायों को मज़बूत और उद्वेलित करना चाहते थे, जो दु:ख–मुसीबतों के मारे हैं और जिनकी कहीं कोई सुनवाई नहीं. इस तड़प ने उन्हें पेशेवर पत्रकारिता के पेशे से मुक्ति दिलाने और ग़रीब–गुरबों से सीधे जुड़ने की राह दिखाई. वह उत्तराखंड को अलग राज्य बनाए जाने के संघर्ष से जुड़े और टिहरी बांध के ख़िलाफ़ भी खड़े हुए. इसके अलावा जहां भी जुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ उठी, वह उसके साथ नज़र आए. उनकी बुलेटिननुमा पत्रिका समाजवादी समालोचना अलग से सरकारी महकमों की आंख की किरकिरी बनी हुई थी.

50 साल की उम्र पार कर रहे प्रशांत राही को ऊधम सिंह नगर से पुलिस ने 17 दिसंबर 2007 को अपनी हिरासत में लिया था. उनकी इकलौती बेटी शिखा राही हिंदी फ़िल्म उद्योग से जुड़ी हैं और तारे जमीं पर जैसी फ़िल्मों की सहायक निर्देशक रही हैं. वह बताती हैं कि पकड़े जाने के अगले दिन उनके पिता को हरिद्वार ले जाया गया. उन्हें बेतरह पीटा गया. धमकी दी गई कि उनकी गुदा में मिट्टी का तेल भी पंप किया जा सकता है और यहां तक कि उन्हें बेटी के साथ बलात्कार करने के लिए भी मजबूर किया जा सकता है.

पुलिस का इरादा प्रशांत राही को जंगल में मार गिरा देने का था. मौक़े की तलाश थी कि यह साजिश सतह पर आ गई और आख़िरकार पांच दिन बाद जंगल से उनकी गिरफ़्तारी दिखा दी गई. कहानी गढ़ी गई कि वह माओवादियों को हथियारों का प्रशिक्षण देने का काम कर रहे थे, तभी पुलिस ने धावा बोला और उन्हें धर दबोचा. प्रशांत राही को इसलिए दबोचा गया कि वह ज़मीन, शराब और बिल्डर माफ़िया की राह का बड़ा अड़ंगा बन गए थे. कहने की ज़रूरत नहीं कि इस त्रिगुट को पुलिस का पूरा साथ और समर्थन हासिल था. प्रसंगवश, तक़रीबन दो दशक पहले पिथौरागढ़ के जुझारू पत्रकार उमेश डोभाल की हत्या इसलिए की गई थी कि वह लगातार शराब और लीसा के तस्करों के साथ पुलिस–प्रशासन की मिलीभगत की पोल खोल रहे थे.

माओवादियों को उखाड़ फेंकने की आड़ में इंसाफ़ और जम्हूरियत के पैरोकारों पर निशाना साधे जाने के किस्सों की सूची बहुत लंबी है. उन पर चर्चा किसी और अंक में.

साथियों के साथ धरना पर मुद्राराक्षस

feedback@chauthiduniya.com

एक संघीय व्यवस्था का यह लाभ हो सकता है कि बहुसंख्यक आबादी किसी क्षेत्र विशेष में अल्पसंख्यक हो सकती है.

अल्पसंख्यकों की हालत समझना ज़रूरी

सैय्यद शहाबुद्दीन

> प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के समय जब पूर्वी यूरोप केकई मुल्क रूस या तुर्की साम्राज्य से आज़ाद हुए तो अल्पसंख्यकों केअधिकार की रक्षा एक मुद्दा बन गया. यह मुद्दा सिर्फ़ युद्ध के बाद के समझौतों में ही नहीं, बल्कि नए बने राष्ट्र संघ के समझौतों में भी शामिल हुआ. द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के समय अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने संयुक्त राष्ट्र का गठन किया.

संयुक्त राष्ट्र संघ में लगभग दो सौ सदस्य देश हैं, लेकिन इनमें शायद ही कोई मुल्क ऐसा हो, जिसकी पूरी आबादी एक ही मज़हब, भाषा, नस्ल या फिर संस्कृति की हो. यानी इन सभी मुल्कों में बहुसंख्यक आबादी के साथ-साथ अल्पसंख्यक आबादी भी है. ऐसे कुछ मामले हो सकते हैं कि एक राज्य में किसी एक समूह का बहुमत न हो, लेकिन एक अल्पसंख्यक समूह कई अन्य के साथ मिलकर पूरी आबादी का पचास फ़ीसदी से कम हो सकता है. आमतौर पर हर राज्य के लिए ज़रूरी है कि उसकी कम से कम 10 फ़ीसदी आबादी की पहचान उसके अपने मजहब, नस्ल, भाषा अथवा संस्कृति के आधार पर हो. और, उसकी यह पहचान बहुसंख्यक आबादी से भिन्न हो. एक राज्य को अल्पसंख्यकों की स्थिति समझने-सुधारने के लिए मानवीय और सभ्य तरीक़े अपनाने चाहिए. चीन, भारत, रूस, यूएसए, ब्राजील या नाइजीरिया में तो यह समस्या और भी जटिल है. यहां अल्पसंख्यक समूह तो लाखों में हैं, लेकिन वे पूरे मुल्क में बिखरे हुए हैं. यानी एक देश में उनकी कुल आबादी तो अधिक है, पर किसी क्षेत्र विशेष में उनकी संख्या कम है. इन समूहों को राजनीति, प्रशासन अथवा विकास योजनाओं में नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है. केंद्रीय व्यवस्था में समस्या और भी पेचीदा हो जाती है. ख़ासकर उस वक़्त, जब फ़ैसला लेने की प्रक्रिया अक्सर कमज़ोर पड़ जाती है. और, लोग इन समस्याओं एवं अल्पसंख्यकों की शिक़ायत को सुलझाने के लिए असंवेदनशील हो जाते हैं. इसकी वजह यह है कि इनकी पहुंच नीति बनाने और उसे लागू करने की प्रक्रिया तक बेहद कम होती है. ऐसे में भारत जैसे संघ या कहें कि अर्द्धसंघीय व्यवस्था का काम बेहद आसान हो जाता है. एक संघीय व्यवस्था का यह लाभ हो सकता है कि बहुसंख्यक आबादी किसी क्षेत्र विशेष में अल्पसंख्यक हो सकती है. मसलन किसी मुल्क की बहुसंख्यक आबादी भी राज्य, ज़िला, उप-ज़िला, नगरपालिका या ग्राम स्तर पर अल्पसंख्यक हो सकती है. ठीक यही बात इसके विपरीत भी हो सकती है. उदाहरण के तौर पर मुसलमान, सिख और ईसाई भारत में तीन महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक समूह हैं. उक्त सभी क्रमश: जम्मू-कश्मीर, पंजाब और उत्तर-पूर्व के कुछ राज्यों में बहुमत में हैं. यदि गहन विश्लेषण किया जाए तो यह पता चलेगा कि कुछ छोटे जातीय समूहों को छोड़कर बाक़ी दूसरे सामाजिक समूहों की उप-जातियां हैं. इनमें कुछ तो कई ज़िलों, उप-ज़िलों, नगर निगमों या गांवों में बहुसंख्यक हैं.

इस समस्या का दूसरा पहलू यह है कि जिन मुल्कों में कोई समूह विशेष बहुसंख्यक होता है, वह मुल्क उसी के मुताबिक़ अपना मजहब, भाषा या संस्कृति को जीवन के हर क्षेत्र में हर स्तर पर लागू करना चाहता है. ऐसे हालात में पूरे मुल्क में समरूपता या सजातीयता के प्रति रुझान भी बढ़ता है. उदाहरण केतौर पर अधिकांश स्लाव मुल्कों में सभी ग़ैर ईसाइयों में स्लाव नाम या उपनाम रखने की दिलचस्पी नज़र आती है. ऐतिहासिक तौर पर देखें तो अल्पसंख्यक समूह अक्सर अपनी असलियत को छिपाने की युक्ति अपनाते हैं. भारत में कोई भी आदमी अपने नाम से तुरंत पहचाना जाता है कि वह किस जाति या मजहब का है. एक ही इलाक़े में रहने वाले लोगों की भाषा और संस्कृति काफ़ी हद तक समान होती है. लेकिन, लोकतांत्रिक व्यवस्था में हर सामाजिक समूह चाहे वह छोटा ही क्यों न हो, की इच्छा होती है कि वह अपनी पहचान को महफ़ूज़ रखे. इसीलिए अल्पसंख्यक समूह सजातीयता को पूरे मुल्क में लागू नहीं करना चाहते हैं या कम से कम उसका विरोध करते हैं. हालांकि इसके कुछ अपवाद भी हैं. कभी हालात ऐसे हो जाते हैं कि अल्पसंख्यक समूह सजातीयता में ही अपने लिए सुरक्षित रास्ता तलाशने लगते हैं और वे बहुसंख्यक आबादी में घुल-मिल जाते हैं. यह उनकेहित में होता है और व्यावहारिक भी. यानी बहुसंख्यक समूह में घुल-मिल जाना उनके लिए लाभदायक भी हो सकता है. इससे जुड़ी सारी बातें कही और की जा चुकी हैं. अल्पसंख्यक होना और अपनी पहचान बरकरार रखना ज़िंदगी की सच्चाई है. अल्पसंख्यकों का मसला तथ्यात्मक है, न कि क़ानूनी. और, हमें यह तथ्य क़बूल करना चाहिए कि इनका योगदान भी एक मुल्क के विकास के लिए काफ़ी अधिक होता है.

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के समय जब पूर्वी यूरोप के कई मुल्क रूस या तुर्की साम्राज्य से आज़ाद हुए तो अल्पसंख्यकों के अधिकार की रक्षा एक मुद्दा बन गई. यह मुद्दा सिर्फ़ युद्ध के बाद के समझौतों में ही नहीं, बल्कि नए बने राष्ट्र संघ के समझौतों में भी शामिल हुआ. द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के समय अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने संयुक्त राष्ट्र का गठन किया. इस संगठन में एक ख़ास बात पर ध्यान दिया गया. वह यह कि अल्पसंख्यक समूह अपने मुल्क के प्रति अधिकारों और कर्तव्यों का निर्वाह करेंगे. वह मुल्क भी इन समूहों केअधिकारों एवं कर्तव्यों की रक्षा करेगा. वास्तव में यह कट्टरपंथ को ख़त्म करने की दिशा में उठाया गया क़दम था. सैद्धांतिक तौर पर सभी देशों ने यह स्वीकार किया कि अल्पसंख्यक भी क़ानूनी तौर पर बाक़ी नागरिकों की तरह हैं. बुनियादी अधिकार, आज़ादी और राज्य द्वारा मुहैया कराए जा रहे सभी संसाधनों पर उनका समान अधिकार है. इस तरह समरूपता का माहौल बनाया गया. संयुक्त राष्ट्र के चार्टर या मानवाधिकार की अंतरराष्ट्रीय घोषणाओं केतहत कोई भी मुल्क किसी भी नागरिक केसाथ मजहब, नस्ल, भाषा या संस्कृति के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता है. दूसरे विश्व युद्ध केबाद औपनिवेशिक काल केख़त्म होने के बाद नए मुल्कों ने अपने संविधान में बुनियादी अधिकारों को भी जगह दी, लेकिन सभी मानवीय मामलों की तरह यहां भी कथनी और करनी में काफ़ी अंतर है. यही वजह है कि यूएन या अंतरराष्ट्रीय समुदाय इन भेदभावों, खासकर नस्ली, धार्मिक और भाषाई को अंतरराष्ट्रीय नियमों, परंपराओं, घोषणाओं और प्रस्तावों के ज़रिए धीरे-धीरे दूर करने की प्रक्रिया में प्रयासरत है.

feedback@chauthiduniya.com

देश के शीर्ष उद्योगपति एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री कमल मोरारका के मोरारका फाउंडेशन ने पिछले 15 वर्षों में इस दिशा में क्रांतिकारी काम किया है.

जैविक खेती

देश भर में फैलता आंदोलन

रूबी अरुण

कुछ वक़्त पहले तक हम भारतीयों में से ज़्यादातर ऑर्गेनिक फूड की ख़ूबियों से वाक़िफ़ तक नहीं थे. यह विदेशियों की ज़्यादा पसंद हुआ करता था, पर अब हालात बदल चुके हैं. अब भारतीय बाज़ार न सिर्फ़ ऑर्गेनिक उत्पादों से अटे पड़े हैं, बल्कि बहुतायत में ऑर्गेनिक उत्पादों की खेती भी की जा रही है. भारत में ऑर्गेनिक उत्पादों के तेज़ी से विस्तार का श्रेय देश के मशहूर उद्योगपति कमल मोरारका द्वारा संचालित मोरारका फाउंडेशन को जाता है. मोरारका फाउंडेशन ने अपने अथक और सतत प्रयास के ज़रिए आज ऑर्गेनिक खेती को आंदोलन का रूप दे दिया है.

फाउंडेशन के कार्यकारी निदेशक मुकेश गुप्ता बताते हैं कि जैविक खेती पैदावार, बचत और स्वास्थ्य के नज़रिए से भी किसानों के लिए फ़ायदेमंद है. लिहाज़ा किसान जैविक खेती की ओर तेज़ी से रुख़ कर रहे हैं. इससे न सिर्फ़ पैदावार बढ़ती है, बल्कि उत्पादों की गुणवत्ता में भी बेतहाशा इज़ाफ़ा होता है. इतना ही नहीं, जैविक खेती करने वाले किसानों की फ़सलों को अन्य फ़सलों की तुलना में क़ीमतें भी ज़्यादा मिलती हैं, जिससे किसान आर्थिक रूप से भी संपन्न बनता है. फ़िलहाल मोरारका फाउंडेशन कुल पंद्रह राज्यों में जैविक खेती करा रहा है. मुकेश गुप्ता इंटरनेशनल कंपीटेंस सेंटर फॉर ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर (आइसीसीओए) के भी अध्यक्ष हैं. आइसीसीओए ऑर्गेनिक उत्पादों की राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मार्केटिंग करने का काम करती है. मुकेश गुप्ता बताते हैं कि वर्ष 2008 तक भारत में 8.65 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि पर ऑर्गेनिक खेती हो रही थी, जो भारत के कुल 14.2 करोड़ हेक्टेयर कृषि क्षेत्र का महज़ 0.61 प्रतिशत है. लेकिन, यह भारतीयों के अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होने का ही नतीजा है कि यह आंकड़ा 2012 तक 20 लाख हेक्टेयर तक पहुंच जाने की उम्मीद की जा रही है. मुकेश गुप्ता बताते हैं कि भारत में ऑर्गेनिक उत्पादों का कारोबार हर वर्ष दोगुना होता जा रहा है. इस रफ़्तार से यह भरोसा बंधा है कि वर्ष 2012 तक भारत से जैविक खाद्यान्नों का निर्यात 4500 करोड़ रुपये तक पहुंच जाएगा.

फ़िलहाल देश खाद्यान्न की कमी से भी जूझ रहा है. खाद्य पदार्थों की क़ीमतें तेज़ी से बढ़ रही हैं. और, ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी देश में हर साल क़रीब 60 हज़ार करोड़ रुपये के खाद्यान्न की बर्बादी हो रही है. यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन जैविक खेती के ज़रिए इस बर्बादी को नियंत्रित किया जा सकता है. इसकी वजह यह है कि ऑर्गेनिक फूड लंबे समय तक ख़राब नहीं होते. उनके संरक्षण के लिए विशेष उपायों की आवश्यकता नहीं पड़ती. जैविक खेती के माध्यम से सूखे जैसी स्थितियों से भी निपटा जा सकता है, क्योंकि जैविक खेती में फ़सलों की सिंचाई के लिए पानी की ज़्यादा ज़रूरत नहीं पड़ती. जैविक खेती से मिट्टी की पौष्टिकता बढ़ती है और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित रहती है.

मोरारका फाउंडेशन के कार्यकारी निदेशक मुकेश गुप्ता बताते हैं कि

भारत वैश्विक स्तर पर जैविक उत्पादों का निर्यातक बन सके, इसके लिए बेहद ज़रूरी है कि लोगों को जागरूक किया जाए. उन्हें समझाया जाए कि जैविक उत्पाद वस्तुतः है क्या. प्राकृतिक तरीक़े से बग़ैर किसी रासायनिक खाद, कीटनाशक और उर्वरक के इस्तेमाल के पैदा किए गए खाद्यान्न सेहत के लिए कितने लाभकारी हैं.

ऐसे वक़्त में जब खाने की तमाम वस्तुओं में मिलावट होने से लोगों की सेहत के साथ खिलवाड़ हो रहा है, तब ऑर्गेनिक फूड की महत्ता बेहद बढ़ जाती है, क्योंकि जैविक उत्पादों में शुद्धता की गारंटी है.

भारत वैश्विक स्तर पर जैविक उत्पादों का निर्यातक बन सके, इसके लिए बेहद ज़रूरी है कि लोगों को जागरूक किया जाए. उन्हें समझाया जाए कि जैविक उत्पाद वस्तुतः है क्या. प्राकृतिक तरीक़े से बग़ैर किसी रासायनिक खाद, कीटनाशक और उर्वरक के इस्तेमाल के पैदा किए गए खाद्यान्न सेहत के लिए कितने लाभकारी हैं. इसके अलावा ऑर्गेनिक फूड सेहत के साथ-साथ पर्यावरण का भी दोस्त है.

देश के शीर्ष उद्योगपति एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री कमल मोरारका के मोरारका फाउंडेशन ने पिछले 15 वर्षों में इस दिशा में क्रांतिकारी काम किया है. जैविक खेती के विकास और जैविक मिट्टी की उपयोगिता के महत्व को समझते हुए मोरारका फाउंडेशन ने राजस्थान के अपने पैतृक स्थान शेखावाटी क्षेत्र समेत देश के कई हिस्सों में काम करना शुरू किया. गोष्ठियां कीं, सेमिनार किए. घर-घर जाकर किसानों को जैविक खेती के फ़ायदे के बारे में बताया और समझाया. क्षेत्र की बंजर मिट्टी, पानी, बाज़ार आदि पर शोध करके फाउंडेशन ने उसका सीधा फ़ायदा क्षेत्र के किसानों को पहुंचाया. प्रशिक्षण शिविरों के मार्फ़त किसानों को जैविक खेती की पद्धति का बारीक़ प्रशिक्षण दिया. जिसका सुपरिणाम यह हुआ कि आज शेखावाटी का पूरा इलाक़ा रेगिस्तान में नख़लिस्तान की तरह हो गया है. दूर-दूर तक हरी-हरी फ़सलें लहलहाती नज़र आती हैं. खाद्यान्नों में दलहन और तिलहन ही नहीं, बल्कि हरी सब्ज़ियां भी बहुतायत में पैदा हो रही हैं. फाउंडेशन की कोशिशों के परिणाम इतने उत्साहवर्द्धक हैं कि साल के बारहों महीने शेखावाटी क्षेत्र में पैदा हुई हरी सब्ज़ियां मसलन टमाटर, बैगन, हरी मिर्च, प्याज़, लहसुन, गाज़र, करेला, मटर इत्यादि मुंबई और दिल्ली के बाज़ारों में सीधे पहुंच रही हैं. यह काम मोरारका फाउंडेशन के निर्देशन में ही संभव हो पाता है. कृषि फार्म के एक काश्तकार नेक राम बताते हैं कि जैविक खेती से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि खेती की लागत 80 फ़ीसदी कम हुई है और कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार हुआ है. किसानों की आमदनी 30 से 40 प्रतिशत बढ़ गई है.

मुकेश गुप्ता बताते हैं कि मोरारका फाउंडेशन का मक़सद ही है कि किसानों को कृषि से व्यवसाय जैसी आमदनी हो. इसके लिए मोरारका फाउंडेशन किसानों को विभिन्न उपयोगी सलाह देता है, मसलन फ़सल का चुनाव, खेती करने के उन्नत तरीक़े, कृषि संबंधी आधुनिक सूचनाएं, फ़सल कटने के बाद वे कैसे बेहतर मूल्य पा सकते हैं. साथ ही वह फ़सल का बीमा, खाद और बीज की उपलब्धता आदि के बारे में शिविरों के माध्यम से बराबर प्रशिक्षण देता है. इसके लिए मोरारका फाउंडेशन ने नवलगढ़ क़स्बे में बस स्टैंड, तहसील, पंचायत समिति और कोर्ट के पास एक एग्री बिज़नेस सेंटर भी स्थापित किया है. सबसे

बड़ा क़दम मोरारका फाउंडेशन ने जो उठाया है, वह यह कि मुंबई में ऑर्गेनिक उत्पादों का देश में पहला और सबसे बड़ा रिटेल स्टोर अपने ऑर्गेनिक ब्रांड डाउन टू अर्थ शुरू किया है. वैसे भी मोरारका के उत्पाद अपनी बेहतरीन गुणवत्ता और शुद्धता के लिए देश और विदेशों में जाने जाते हैं. इस ऑर्गेनिक स्टोर में दो सौ से ज़्यादा ऑर्गेनिक उत्पाद हमेशा उपलब्ध रहते हैं. मुकेश गुप्ता मोरारका ऑर्गेनिक के भी कार्यकारी निदेशक हैं. उनका कहना है कि इस वक़्त देश में ऑर्गेनिक उत्पादों के लगभग 30 मिलियन उपभोक्ता हैं, लेकिन उन्हें इन उत्पादों को ख़रीदने में बेहद परेशानी का सामना करना पड़ता है. इसलिए मोरारका ऑर्गेनिक्स की योजना है कि वह देश भर में ऐसे रिटेल स्टोर शुरू करे, ताकि उपभोक्ताओं के साथ-साथ किसानों को भी फ़ायदा हो सके. इस पहल से किसान बिचौलियों के चंगुल में आए बिना अपनी फ़सल का उचित मूल्य पाते हैं.

फ़िलहाल फाउंडेशन क़रीब एक लाख एकड़ भूमि में ऑर्गेनिक खेती का विकास कर चुका है. इसके लिए फाउंडेशन वर्मीकल्चर का अधिक से अधिक इस्तेमाल कर रहा है. वर्ष 1995 में राजस्थान सरकार ने राज्य के दस हज़ार किसानों के साथ जैविक खेती की शुरुआत करने का प्रस्ताव मोरारका फाउंडेशन के साथ किया था. आज दो लाख से ज़्यादा किसान इस फाउंडेशन के साथ जुड़कर जैविक खेती कर रहे हैं. ये किसान जैविक खादों का प्रयोग कर बेहतरीन गुणवत्ता के फल, सब्ज़ी, दलहन, तिलहन और मसालों का उत्पादन कर रहे हैं.

मुकेश गुप्ता बताते हैं कि केंचुओं का इस्तेमाल कर कचरे को वर्मीकंपोस्ट में बदल कर जैविक खाद बनाई जाती है. वर्मीकंपोस्ट की यह विधि शेखावाटी से प्रचलित होकर समूचे राजस्थान, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश तक पहुंच गई है. मुकेश गुप्ता कहते हैं कि यह मोरारका फाउंडेशन और मोरारका ऑर्गेनिक की लगन का ही नतीजा है कि विकसित केंचुओं का निर्यात हम दुनिया के कई विकसित और विकासशील देशों को कर पा रहे हैं. हमारी जो कोशिशें हैं, उनमें आने वाले दिनों में भारत विश्व स्तर पर जैविक खेती में निश्चित तौर पर नए आयाम स्थापित करेगा.

ruby@chauthiduniya.com

शेखावाटी उत्सव
जैविक भोज की मची धूम

पिछले पंद्रह वर्षों से होने वाले शेखावाटी उत्सव की ख़ास पहचान बन चुका है मोरारका फाउंडेशन द्वारा आयोजित जैविक उत्पादों से तैयार किए गए लजीज़ व्यंजनों का जैविक भोज. मेले के दूसरे दिन दोपहर में होने वाले इस भोज का ज़ायका लेने दूरदराज़ से गणमान्य अतिथि पहुंचते हैं, जिनमें विदेशी अतिथियों और मीडियाकर्मियों की ख़ासी उपस्थिति रहती है. इस भोज में शेखावाटी में ही उत्पादित जैविक खाद्यान्नों के पकवानों को परोसा जाता है. बाजरे और मक्के की रोटी, गुड़, मक्खन, चावल, गेहूं की रोटी, कढ़ी, खीर, लहसुन-मिर्च की चटनी, कैर की सब्ज़ी, आलू मटर गोभी टमाटर की लाजवाब सब्ज़ी, सांगरी, दही, छाछ, राबड़ी आदि. ये सभी व्यंजन अपनी मनमोहक खुशबू और स्वाद से अतिथियों को अपना मुरीद बना लेते हैं.

इस ऑर्गेनिक भोज के माध्यम से फाउंडेशन, शेखावाटी उत्सव में दूरदराज़ से आए लोगों को ऑर्गेनिक फूड के महत्व और उपयोगिता के बारे में जागरूक करता है. इस भोज में परोसे गए खानों की एक और बेहद ख़ास बात होती है. जैविक होने की वजह से ये खाद्यान्न पकने के बाद भी अपनी असली रंगत नहीं छोड़ते, जिसकी वजह से ये सुपाच्य और स्वादिष्ट तो हो ही जाते हैं, देखने में भी बड़े आकर्षक लगते हैं. शेखावाटी के रहने वाले नवल किशोर अग्रवाल कहते हैं कि यहां के लोगों को हर साल इस भोज का बड़ी बेसब्री से इंतज़ार रहता है. किसानों का मनोबल बढ़ाने के लिए इस भोज में उन्हीं के द्वारा तैयार किए गए व्यंजन परोसे जाते हैं.

जैविक खेती करने वाले या जैविक खेती करने के इच्छुक किसान इस सिलसिले में अगर कोई सलाह-मशविरा चाहते हैं या उन्हें जैविक खेती करने में किसी परेशानी का सामना करना पड़ रहा है तो वे नीचे लिखे पते पर इस क्षेत्र में मील का पत्थर बन चुके मोरारका फाउंडेशन से संपर्क कर सकते हैं. इसके अलावा किसान भाईयों को अपने उत्पादों के विपणन या मार्केटिंग में भी किसी समस्या से दो चार होना पड़ रहा है तो भी मोरारका फाउंडेशन उनकी पूरी सहायता करने को तत्पर है.

एम आर मोरारका फाउंडेशन-जीडीसी रूरल रिसर्च फाउंडेशन
वाटिका रोड,ऑफ टोंक रोड,श्री राम की नांगल,वाया सियतपुरा आरआईआईसीओ,जयपुर-302022
फोन नंबर हैं-0141-2771100,2771101, फैक्स-0141-2770031
ईमेल-info@morarkango.com, वेबसाईट-www.morarkango.com

सभी फोटो-प्रभात पाण्डेय

चौथी दुनिया

अक्टूबर 2009 में जेनेटिकली इंजीनियरिंग अप्रूवल कमिटी (जीईएसी) ने भारत में पहले जेनेटिकली मोडिफाइड फसल बीटी बैंगन को मंजूरी दी.

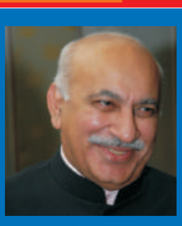

एम जे अकबर

बेउम्मीद बातचीत से शांति की उम्मीद

अक़्लमंद देशों की फ़ितरत में पांव पीछे खींचने जैसी बात नहीं होती. वे या तो युद्ध के लिए जाते हैं या फिर शांति की बात करते हैं. इसे देखते हुए यह लाज़िमी है कि भारत और पाकिस्तान के बीच एक बार फिर औपचारिक बातचीत की शुरुआत हो. लेकिन अहम तथ्य यह है कि इस बातचीत का आधार क्या होना चाहिए. शांति के मुक़ाबले युद्ध की शुरुआत करना हमेशा ही आसान होता है. दुश्मनी जताने के लिए किसी विशेष साजोसामान की जरूरत नहीं होती, बस रणभेरी बजाने की देर होती है. इसके मुक़ाबले शांति बहाली की प्रक्रिया बेहद जटिल होती है. यह एक ऐसे ऑर्केस्ट्रा की तरह होता है, जिसमें बैंड के सभी सदस्य अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग अलापने की हालत में होते हैं. किसी कोने से कोई बेसुरा सुर निकलता है तो ड्रम बजाने वाला मिलिट्री बैंड बजाने लगता है. यह भी हो सकता है कि बैंड के अलग-अलग सदस्य गाने की अलग-अलग पंक्तियां गा रहे हों या वायलिन बजाने वाला ऐसी तान छेड़ रहा हो, जिसका मक़सद श्रोताओं से ज़्यादा भगवान को ख़ुश करना हो. अब यदि बैंड मास्टर लाचार होकर अपने बाल ख़ुद ही नोच रहा हो, तो आप उसकी हालत समझ सकते हैं और इस पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए.

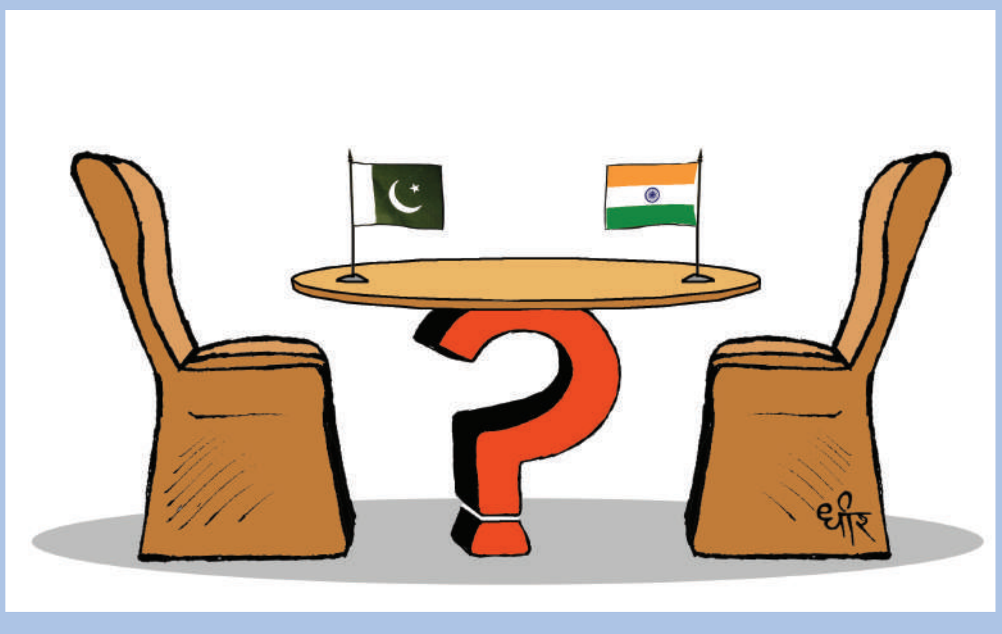

आगामी 25 फरवरी को भारत और पाकिस्तान के विदेश सचिवों निरूपमा राव और सलमान बशीर के बीच होने वाली संभावित बातचीत को लेकर मचे शोरगुल को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों देशों की मीडिया को दो शत्रु राष्ट्रों के बीच होने वाली द्विपक्षीय बातचीत का मतलब नहीं पता है. यह बात इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि दोनों ही देशों, भारत और पाकिस्तान में लोगों की सोच को प्रभावित करने में मीडिया का बड़ा योगदान होता है. आश्चर्य की बात तो यह है कि हर बड़ा पत्रकार यही सोचकर दुबला होता जा रहा है कि जब दोनों देशों के प्रतिनिधि मिलेंगे तो आख़िर बात क्या करेंगे. हालांकि सच बात यह है कि बातचीत का मुद्दा पता करने के लिए किसी स्टिंग ऑपरेशन की ज़रूरत नहीं है. रक्षा मंत्री ए के एंटोनी पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि सीमापार से घुसपैठ में कोई कमी नहीं आई है और पुणे की फिज़ाओं से आ रही बारूद की गंध इसका सबसे ताज़ा उदाहरण है. कश्मीर घाटी में फैले आतंकवाद और 1947-48 के बाद से ही इतर तरीक़ों से युद्ध छेड़ने की पाकिस्तानी कोशिशों पर ज़ोर डालने के अलावा निरूपमा राव के पास और कोई विकल्प नहीं है.

भारत के ख़िलाफ़ विद्रोह की इस रणनीति को अमलीजामा उसी इंसान ने पहनाया, जिसने पहली लड़ाई की योजना तैयार की थी. कर्नल अकबर ख़ान ने इसके लिए एक नया नाम तारिक अपनाया, जो 712 ईस्वी में स्पेन को पराजित करने वाले अरब लड़ाके तारिक बिन जायद से प्रभावित था. 1 जनवरी, 1949 को युद्ध विराम के बाद उसके दो लेख प्रकाशित हुए- व्हाट नेक्स्ट इन कश्मीर और कीप द प्लॉट बॉयलिंग इन अब्दुल्लाज कश्मीर. प्रधानमंत्री लियाकत अली ख़ान भारतीय क़ब्ज़े वाले कश्मीर में विद्रोहियों की सेना तैयार करने के लिए लाखों रुपये देने के लिए राजी हो गए. कश्मीर में विद्रोह की चिंगारी तब से कमज़ोर नहीं पड़ी है, जबकि अब्दुल्ला खानदान की तीसरी पीढ़ी अब राजनीति में सक्रिय हो चुकी है. देखा जाए तो 25 फरवरी को होने वाली इस बातचीत का परिणाम इस बात पर ज़्यादा निर्भर करेगा कि राव वहां क्या सुनती हैं, बनिस्बत इसके कि वह क्या बोलती हैं.

पाकिस्तानी विदेश सचिव के रवैये के बारे में अंदाज़ा लगाना कोई ख़ास मुश्किल नहीं है. इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं कि वह उन्हीं बातों को दोहराएंगे, जो पिछले छह दशकों से उनका मंत्रालय चिल्लाता रहा है- कश्मीर, कश्मीर और केवल कश्मीर. पुराने दिनों में पाकिस्तान इस बात पर ज़ोर देता था कि कश्मीर उसका एक हिस्सा है. हालांकि हाल के सालों में उसके रुख़ में थोड़ा बदलाव आया है और अब वह आज़ाद कश्मीर में रहने वाले लोगों के अधिकारों की बात करता है. लेकिन फिर भी इसमें कोई दो राय नहीं कि कश्मीर को भारत का हिस्सा मानने को वह अब भी तैयार नहीं है. समय रहा तो सलमान बशीर सिंधु नदी के पानी का मामला उठा सकते हैं. हालांकि यह कोई बड़ा मुद्दा नहीं है, क्योंकि भारत पहले ही इस मामले में अपने लचीले रुख़ का इज़हार कर चुका है. समस्या का कोई सार्थक परिणाम न निकल रहा हो तो अक्सर हम निरर्थक बातों पर ज़ोर देते हैं. यह इसलिए संभव होता है, क्योंकि निरर्थक बातों को अपने ढंग से कहने की स्वतंत्रता होती है. लेकिन सच्चाई यह है कि अब बहानों के लिए कोई जगह नहीं बची. आतंकवाद की चर्चा होते ही कश्मीर मुद्दे को सुलझाने की ज़रूरत वाले बयान सुन-सुनकर लोग अब थक चुके हैं. आतंकियों के बढ़े हौसलों के मद्देनज़र संभव है कि इस बार पाकिस्तान अपनी लाचारी का हवाला देने की भी कोशिश करे, लेकिन उसके इस तर्क में कोई दम नहीं दिखता. पाकिस्तानी व्यवस्था से खार खाए आतंकी संगठन यदि पेशावर में कोई कार्रवाई करते हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि देश की सरकार श्रीनगर, पुणे या मुंबई में ऐसी ही कार्रवाइयों के लिए आतंकियों को उकसाए और हरसंभव मदद पहुंचाए. कश्मीर मुद्दे पर पाकिस्तान भारत के साथ अब तक दो समझौतों पर हस्ताक्षर कर चुका है, 1966 में ताशकंद में और 1972 में शिमला में. दोनों ही समझौतों में 1 जनवरी, 1949 की युद्ध विराम रेखा को अंतरराष्ट्रीय सीमा मानने की बात की गई है. हालांकि शिमला समझौते के मसौदे में यह बात ज़्यादा स्पष्ट तरीक़े से कही गई है. इस मुद्दे पर एक और समझौता हो जाए तो समस्या ही ख़त्म हो जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं लगता कि यह बातचीत के एजेंडे में शामिल है.

अब कहने या सुनने के लिए कुछ नया बचा है क्या? या फिर हम केवल इसलिए बातचीत करेंगे कि ऐसा करना चाहिए? यदि ऐसा है भी तो यह बातचीत न करने से बेहतर विकल्प है. यह शांति की इच्छा रखने वाले लोगों द्वारा शांति के लिए पहल करने का प्रयास सरीखा है, न कि समस्या का हल निकालने की कोशिश. वैसे भी समस्या का एक ही हल है कि यथास्थिति बरकरार रहे, लेकिन पाकिस्तान को यह मंजूर होता तो 1972 के बाद से अब तक हमारे संबंध सामान्य बन चुके होते और भारत-पाकिस्तान मसले पर दर्ज़नों की संख्या में किताबें लिख अपनी जेबें भरने वाले लेखकों की मुराद भी पूरी नहीं होती. ऐसे में बेहतर है कि हम इस बातचीत को बिना किसी उम्मीद के देखें, ताकि शांति बहाली के लिए कुछ उम्मीद तो बने.

feedback@chauthiduniya.com

पर्यावरण से संबंधित फैसलों में हितों का टकराव

कांची कोहली

भारत का समाजवादी लोकतंत्र प्रतिनिधित्व की राजनीति में अच्छी तरह रचा-बसा है. यहां विशेषज्ञों की सभा और समिति के बारे में आमतौर पर यह माना जाता है कि वे स्थितियों को बेहतर ढंग से समझते हैं. बनिस्बत उनके, जो ऐतिहासिक तौर पर सत्ता प्रतिष्ठान में निर्णायक भूमिका रखते हैं. यह सब एक प्रक्रिया के तहत होता है. इसमें प्राथमिकताएं सुनिश्चित होती हैं, योजनाओं का मूल्यांकन किया जाता है और विकास के रास्ते तैयार किए जाते हैं.

एक दिलचस्प बात यह है कि समय के साथ निर्णय लेने की इस प्रक्रिया का इस्तेमाल नीति-निर्धारण के मुद्दों से आगे बढ़कर क़ानून निर्माण के क्षेत्र में भी होने लगा है. हाल के वर्षों में रेगूलेटरी इंफोर्समेंट के बढ़ते चलन का परिणाम यह हुआ है कि पेशेवर संस्थाओं को भी सिफ़ारिशी कार्य सौंपे जा रहे हैं. इसका सबसे बड़ा उदाहरण है वैज्ञानिक एवं पेशेवर संस्थाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी, जिन्हें पर्यावरण से जुड़े तमाम क़ानूनों को कार्यान्वित करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई है. इनके गठन का प्रमुख उद्देश्य निर्णय प्रकिया में निष्पक्षता और कुशलता सुनिश्चित करना है. हालांकि इस काम में भी पर्यावरण की रक्षा उनका प्राथमिक उद्देश्य होगा.

यहां तक कि हम यह भी कहते हैं कि मौजूदा पर्यावरण नियम इकोलॉजिकल सिद्धांत के मुताबिक़ बनाए गए हैं, लेकिन इनके बीच दरार आनी शुरू हो चुकी है. वे अपरिपक्व मान्यताओं को चुनौती देते हैं. वे इस मान्यता को चुनौती देते नज़र आते हैं कि संस्थाएं और उन्हें चलाने वाले लोग अपने सामाजिक एवं राजनीतिक हित को किनारे रखकर काम करेंगे. यह कैसे मुमकिन है कि ऊर्जा मंत्रालय का कोई पूर्व सचिव, जो हाइड्रो पावर डेवलपर्स की गवर्निंग बॉडी में शामिल है, पर्यावरण क़ानूनों पर फ़ैसले से संबंधित किसी मीटिंग में शामिल हो और अपने पूर्वाग्रहों से प्रभावित न हो? जब एक ग़ैर सरकारी संस्था का प्रमुख, जो किसी औद्योगिक संगठन का प्रतिनिधित्व भी करता है और पर्यावरण से संबंधित किसी कमिटी का सदस्य हो तो उसका कौन सा हित सबसे पहले आता है?

पिछले कुछ वर्षों में फ़ैसले लेने वाली कमिटी के सामने हितों में टकराव कई बार देखने को मिला. भारत के बायोलॉजिकल डायवर्सिटी एक्ट 2002 के तहत नेशनल बायोडायवर्सिटी अथॉरिटी के ज़रिए एक कमिटी का गठन किया गया, जो राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से बायोलॉजिकल संसाधनों के इस्तेमाल के लिए आने वाले आवेदनों की जांच करता है. जबसे इस कमिटी का गठन हुआ है, तबसे अब तक इसकी पांच बार बैठक हो चुकी है. इस दौरान सरकारी मान्यता प्राप्त संस्थाओं मसलन, नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज़, एनआरसी ऑन मेडिसिनल एंड एरोमेटिक प्लांट आदि के आवेदनों को भी मंजूरी दी गई, जबकि इनके प्रतिनिधि भी इस कमिटी के सदस्य हैं. बैठक में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) का एक वैज्ञानिक भी शामिल था. इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स (आईपीआर) के लिए सीएसआईआर के 126 आवेदनों पर विचार किया गया और उसे मंजूरी भी दी गई. 26 जुलाई 2007 को सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी एम एल मजूमदार की अध्यक्षता में गठित एक्सपर्ट अपराइज़ल कमिटी यानी विशेषज्ञ मूल्यांकन समिति (ईएसी) द्वारा पांडुरंगा टिंबलो इंडस्ट्रीज़ को मंजूरी दी गई. मंजूरी देने के समय मजूमदार ख़ुद चार कंपनियों यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, आरबीजी मिनरल्स इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड, हिंदुस्तान डॉर-ऑलिवर लिमिटेड और आधुनिक मेटालिक्स लिमिटेड के निदेशक थे. प्रत्यक्ष तौर पर इन माइंस का पांडुरंगा टिंबलो से कुछ ख़ास लेना-देना नहीं है, लेकिन निश्चित तौर पर अध्यक्ष की नियुक्ति में निष्पक्षता नहीं बरती गई.

अक्टूबर 2009 में जेनेटिकली इंजीनियरिंग अप्रूवल कमिटी (जीईएसी) ने भारत में पहले जेनेटिकली मोडिफाइड फसल बीटी बैंगन को मंजूरी दी. फ़ैसला लेने से पहले मामले पर विचार करने के लिए एक एक्सपर्ट कमिटी का गठन किया गया. जीईएसी का अंतिम फैसला व्यापक तौर पर इसी कमिटी के सुझावों पर आधारित था. इस विशेषज्ञ समिति में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ वेजीटेबल रिसर्च (आईआईवीआर) के निदेशक डॉ. मथुरा राय शामिल थे. आईआईवीआर यूएस-एड के एबीएसपी-टू प्रोजेक्ट से जुड़ा है, जिसके तहत बीटी बैगन को विकसित किया गया. ज़ाहिर है, बीटी बैगन की मंजूरी में किसी तरह का कोई संदेह नहीं था. समिति में शामिल अन्य लोगों में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के डॉ. आनंद कुमार भी थे, जो ख़ुद बीटी बैगन को विकसित करने के काम से जुड़े हैं. ध्यान रहे कि इस कमिटी का प्रमुख काम ज़ैविक सुरक्षा और प्रायोगिक परीक्षणों से मिलने वाले आंकड़ों का आकलन करना था. उक्त सभी टकराव की गंभीर वजहें हैं. हालांकि कई बार हितों का यह टकराव सतह पर नज़र नहीं आता, लेकिन यही वह अवसर है, जिसमें कोई नीति निर्धारक किसी क्षेत्र विशेष के विकास के लिए वहां पहले से मौजूद वनक्षेत्र को ख़त्म करने के प्रस्ताव पर विचार करता है. ऐसी परिस्थितियों में ही उसके पूर्वाग्रह उसकी निर्णय प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाने की हालत में आ जाते हैं. अन्यथा इसकी और कोई व्याख्या नहीं हो सकती कि ऊर्जा ज़रूरतों को पूरा करने के लिए किसी प्रोजेक्ट को मंजूरी दे दी जाए, भले ही वह किसी पुराने फ़ैसले के मुताबिक़ ग़ैरक़ानूनी हो.

हमारा सवाल यह है कि कहां गए वैसे वैज्ञानिक, जिनका संबंध कॉरपोरेट घरानों से नहीं है? कहां हैं वैसे विशेषज्ञ, जिनका राजनीतिक दलों से ताल्लुक नहीं है? पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर लिए जा रहे फ़ैसलों में विशेषज्ञों का रंग तो बेशक़ दिखता है, लेकिन समस्या यह है कि वह हमेशा हरा नहीं होता.

साथ में मंजू मेनन
feedback@chauthiduniya.com

जॉर्ज साहब और चौथी दुनिया

एक थे जॉर्ज फर्नांडिस!

संपादकीय लेख में वयोवृद्ध समाजवादी नेता जॉर्ज फर्नांडीस की हालत के बारे में पढ़कर दु:ख हुआ. बीमारी की हालत में परिवार के लोगों द्वारा उन्हें अपने क़ब्ज़े में रखने की कोशिशों के बारे में जानकर सहसा विश्वास नहीं होता, लेकिन पैसे का लोभ इंसान से क्या कुछ नहीं कराता. तमाम उम्र लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले जॉर्ज इस हालत में पहुंच जाएंगे, यह किसने सोचा होगा. लेकिन वास्तविकता यह है कि ऐसे वाकये हमारे देश में होते ही रहते हैं. समाज की मानसिकता ही कुछ ऐसी हो गई है कि लोग बड़े-बूढ़ों की क़द्र नहीं करते. केवल बड़े शहर ही नहीं, देश के सुदूर ग्रामीण इलाकों तक में पैसे और संपत्ति के लालच में बुजुर्गों के साथ बंधुआ मजदूर जैसा बर्ताव आम हो चुका है. यह सच है कि इस बारे में कितने भी क़ानून क्यों न बन जाएं, स्थितियों में सुधार तभी होगा, जब हमारी मानसिकता में बदलाव आए और इस काम में सरकार से बड़ी भूमिका मीडिया की हो सकती है.

योगेंद्र यादव, *खगड़िया, बिहार.*

चौथी दुनिया ने जॉर्ज साहब की हालत पर जो कुछ भी लिखा, वह दिल को हिला देने वाला है. इस मामले में आवाज़ उठाकर आपने एक सराहनीय काम किया है. कोई अख़बार उनके बारे में कुछ भी नहीं बोल रहा है कि वह कहां हैं और कैसे हैं. यह बेहद अफसोस की बात है. लेकिन, आपने इस मामले में लिखा और अच्छा लिखा. इसके लिए चौथी दुनिया परिवार को धन्यवाद.

डॉ. संतोष मानव, वरिष्ठ पत्रकार, *ग्वालियर, मध्य प्रदेश.*

कमजोर लोगों की आवाज़

चौथी दुनिया में प्रकाशित संवेदनशील और गंभीर लेखों को पढ़ना अच्छा लगता है. इसके साथ ही समाज में व्याप्त बुराइयों को यह अख़बार जिस अंदाज़ में विश्लेषित करता है, उससे कमज़ोर तबके के लोगों की दशा की जानकारी मिलती है. उम्मीद है, समाज के कमज़ोर तबके को आपका समर्थन हमेशा मिलता रहेगा.

कविता, *दरियागंज, दिल्ली.*

साहित्य पर ज़ोर हो

चौथी दुनिया के अंक 48 के अवलोकन का सुअवसर मिला. आपको निर्भीक, निष्पक्ष और बेबाक पत्रकारिता के लिए साधुवाद. आपने अध्यात्म, विज्ञान, खेल और मानवीय मूल्यों को अभिप्रेरित करने वाली ख़बरों का जो समावेश किया है, वह सराहनीय है. लेकिन, साहित्य पृष्ठ पर कुछ कमी खली. आजकल वैसे भी मीडिया में साहित्य को ज्यादा प्रमुखता नहीं मिलती और साहित्यप्रेमी तरस कर रह जाते हैं. यदि साहित्यिक मुद्दों के विश्लेषण पर थोड़ा और ज़ोर हो तो यह अख़बार अपने आप में संपूर्ण हो जाएगा. आशा करता हूं कि चौथी दुनिया समाज में एक नई चेतना का संचार करने में सहायक सिद्ध होगा.

चंद्रकांत यादव, *चंदौली, उत्तर प्रदेश.*

ग़रीबों के साथ खिलवाड़

22-28 फरवरी के अंक में दिल्ली में जन वितरण प्रणाली में व्याप्त भ्रष्टाचार से संबंधित आलेख एक ऐसे सच को बयां करता है, जिसके बारे में जानते सभी हैं, लेकिन कोई बोलना नहीं चाहता. जन वितरण प्रणाली के तहत ग़रीबों को बांटे जाने वाले राशन में घोटाले से ज़्यादा शर्मनाक और भला क्या हो सकता है. ताज्जुब की बात यह है कि कोई इसकी ज़िम्मेदारी लेने को तैयार नहीं. नेता हों या अधिकारी, हर कोई इसका दोष एक-दूसरे के पर मढ़ने की फ़िराक़ में दिखते हैं. इस लेख के प्रकाशन के बाद संभव है कि नेताओं और अधिकारियों की तंद्रा टूटे और ग़रीबों को उनका वाज़िब हक़ दिलाने के मामले में कुछ कार्यवाही हो.

अनुभा त्रिपाठी, *दिलशाद गार्डन, दिल्ली.*

एक प्रशंसनीय पहल

सूचना के अधिकार से संबंधित कॉलम की शुरुआत एक प्रशंसनीय पहल है. ऐसे लोगों के लिए, जो इसका इस्तेमाल करना तो चाहते हैं, लेकिन सूचना हासिल करने की प्रक्रिया की जानकारी न होने के कारण ऐसा करने से वंचित हैं. उम्मीद है, ऐसे प्रयास आगे भी जारी रहेंगे.

मुकेश शर्मा, *होशियारपुर, पंजाब.*

बच्चों के नाम पर लूटखसोट

अख़बार अच्छा और ज्ञानवर्द्धक लगा. हाल में छपी रिपोर्ट बच्चों की आड़ में लूटखसोट पढ़कर यह जानकारी मिली कि अपनी उपलब्धियों के नाम पर सरकारी अधिकारी क्या-क्या कारगुज़ारियां करते हैं. जनता के धन के साथ ऐसा खिलवाड़ और वह भी बच्चों के नाम पर, यह वास्तव में आंखें खोल देने वाली रिपोर्ट है. उम्मीद है, ऐसे लेख बार-बार देखने को मिलेंगे.

गोपाल बलोडिया, *जमुई, बिहार.*

पुराने दिन याद आए

चौथी दुनिया ने पुरानी यादें ताज़ा कर दीं. समय के हिसाब से समाचारपत्र बढ़िया है. फिर भी वर्षों बाद चौथी दुनिया को देखना-पढ़ना किसी चमत्कार से कम नहीं लग रहा है. पुन: प्रकाशन के लिए बधाई.

आर बी सिंह, *लखनऊ, उत्तर प्रदेश.*

मध्य प्रदेश परिशिष्ट भाया

मध्य प्रदेश परिशिष्ट देखकर अच्छा लगा. इस पहल से अपने प्रदेश के बारे में अच्छी-बुरी बातें निर्भीक पत्रकारों द्वारा जानने को मिलेंगी. मेरा मानना है कि मध्य प्रदेश को एक बेहतर राज्य बनाने के लिए जागरूक लोगों की ज़रूरत है, जो प्रदेश के नेताओं की नींद खोल सके. चौथी दुनिया का मध्य प्रदेश अंक हमारी इन उम्मीदों पर निश्चित ही खरा उतरेगा. हमें समाज और राजनीति से संबंधित लेख पढ़ने का मौक़ा बार-बार मिलेगा.

कबीर सक्सेना, *भोपाल, मध्य प्रदेश.*

पाठक अपने विचार और सुझाव हमें इस पते पर भेज सकते हैं-
संपादक, चौथी दुनिया, एफ-2, सेक्टर - 11
नोएडा (उत्तर प्रदेश) पिन-201301
ई-मेल पता : feedback@chauthiduniya.com

जब तोप मुक़ाबिल हो

संतोष भारतीय

टाइम्स ऑफ इंडिया और जंग ने जनता को धोखा दिया है

कुछ महीनों पहले हमें दिल्ली और देश के अनेक क्षेत्रों में कुछ बड़ी-बड़ी होर्डिंग्स दिखाई पड़ीं. उनमें नारा बड़ा आकर्षक था. बाद में पता चला कि ऐसी ही होर्डिंग्स पाकिस्तान में भी लगी हैं. हमारे देश के अंग्रेज़ी अख़बार टाइम्स ऑफ इंडिया और पाकिस्तान के एक बड़े अख़बार जंग ने हाथ मिलाया है कि वे भारत और पाकिस्तान के बीच मुहब्बत बढ़ाने वाले काम करेंगे. इस अभियान का नाम उन्होंने दिया, अमन की आशा.

जो लोग लड़ाई, क़त्ल, हत्या और मौतें नहीं चाहते, उन्हें लगा कि एक बड़ा काम होने वाला है, क्योंकि अब दोस्ती बढ़ाने का काम मीडिया ने अपने हाथ में लिया है. हालांकि घोषणा केवल दो अख़बारों ने की, पर आशा पैदा हुई कि और भी अख़बार और बाद में टेलीविज़न भी इस काम में लगेंगे.

पाकिस्तान और भारत में वह पीढ़ी धीरे-धीरे ख़त्म हो रही है, जिसने बंटवारा देखा था. अपने घर वालों की हत्याएं, बलात्कार और लूट देखे थे. इस पीढ़ी ने पचास साल से अपने वारिसों को नफ़रत और बदले की बातें समझाईं. बाद में दुनिया में बदलाव आने लगा. धीरे ही सही,

पाकिस्तान जाने वाले हिंदुस्तानियों का स्वागत भी गर्मजोशी से होने लगा और हिंदुस्तान में भी पाकिस्तान से आने वाले अपने जैसे लगने लगे. भारत में पाकिस्तान के अठारहवीं शताब्दी में जीने के भ्रम टूटे तो पाकिस्तान से आने वाली पीढ़ी को भी लगा कि हिंदू भी उनके जैसे ही हाड़-मांस के प्यार करने वाले लोग होते हैं. पर्दा हटना शुरू हुआ तो एक दूसरे के असली चेहरे ने मिलने की, जीने की कशिश भी बढ़ा दी.

पर भारत में लगातार होने वाली आतंकवादी घटनाओं ने नज़दीक आने की कोशिशों में अड़चन पैदा करने का प्रयास किया. भारत में यह बताने वाले बहुत कम हैं कि पाकिस्तान भी आतंकवाद की उतनी ही चपेट में है, जितना कि भारत. वहां भी उतनी ही मौतें धमाकों से हो रही हैं, जितनी भारत में. वहां भी बेकार और बेरोज़गार आतंकवादी खेती के लिए वैसे ही खाद का काम कर रहे हैं, जितना भारत में कर रहे हैं. वहां की नीतियां भी उतनी ही जनता से दूर हैं, जितनी भारत में. कुल मिलाकर यह कहना वाजिब होगा कि वहां का भी वही हाल है, जो भारत में है. वहां भी अवसरों की उतनी ही कमी है, जितनी भारत में. वहां भी विदेशी ताक़तों का वर्चस्व वैसा ही है, जैसा भारत में. वहां भी जनता आतंकवादियों और कट्टरपंथियों के उतने ही ख़िलाफ़ है, जितनी भारत में. बस एक फ़र्क़ है कि वहां आतंकवादी और कट्टरपंथी मिलकर सत्ता हथियाने की योजना पर काम कर रहे हैं, पर हमारे यहां अभी इसके संकेत नहीं मिले हैं.

ऐसी स्थिति में जब अमन की आशा की घोषणा हुई तो मन में सचमुच आशा जगी. सरकारें तो कुछ करती नहीं, उल्टे ऐसा माना जाता है कि सरकारें तो यह भी नहीं चाहतीं कि दोनों देशों के लोगों को आपस में खुलकर मिलने का मौक़ा मिले और वे दोनों देशों की सच्चाई जान जाएं. जो यह बातें बता सकते हैं, जिनमें लेखक, साहित्यकार, रंगकर्मी, नाटककार और पत्रकार शामिल हैं, उन्हें दोनों सरकारें आने-जाने का वीज़ा नहीं देतीं. एक सरकार ने इनमें से कइयों का नाम आईएसआई के संपर्क सूत्र के रूप में तो दूसरे ने रॉ के संपर्क सूत्र के रूप में लिख रखा है. किसी जटिल घूसखोर सिपाही ने कभी पैसे न मिलने पर अपनी डायरी में जो लिखा, सरकारी काग़ज़ों में वही सबसे बड़ा सच बन गया है. इसीलिए आशा जगी कि आज दो बड़े अख़बार समूह मिले हैं तो कुछ नया होगा.

पाकिस्तान में कुछ पत्रकार हैं, जिन पर वहां के लोग बहुत भरोसा करते हैं. इनमें हामिद मीर, शाहिद मक़सूद, कामरान ख़ान, काशिफ अब्बासी, तलत हुसैन और मुश्ताक़ मिनहास, जावेद रशीद और मुज़ाहिद मंसूरी प्रमुख हैं. अगर ये हिंदुस्तान आएं और वापस पाकिस्तान जाकर सच्चाई लिखें तो दोस्ती की हवा और ख़ुशबू फैलाई जा सकती है. हिंदुस्तान के ज़्यादातर पत्रकार पाकिस्तान जाते हैं, लौटकर बातें अच्छी करते हैं, पर लिखते नहीं हैं. और जो लिखते हैं, उसमें दोस्ती कम होती है. इनका कहना है कि उनका अख़बार सच्चाई लिखने नहीं देता. सच्चाई तो ये जानें और अख़बार जाने, लेकिन हम इस संपादकीय में श्री कमल मोरारका की तारीफ़ करना चाहते हैं, जिन्होंने हमेशा सच्चाई लिखने के लिए दबाव डाला है. मुंबई से निकलने वाला ऑफ्टरनून और दिल्ली से निकलने वाला चौथी दुनिया इसका प्रमाण है और आशा करते हैं कि इस वर्ष दिल्ली और मुंबई से एक साथ प्रकाशित होने वाला अंग्रेज़ी दैनिक द डेली भी इसका जीता जागता उदाहरण बनेगा.

टाइम्स ऑफ इंडिया ने भारत में और जंग ने पाकिस्तान में जनता को धोखा दिया है. उन्होंने इस अभियान को ठंडे बस्ते में डाल दिया है. उन्होंने इस अभियान का ज़ोर शोर से प्रचार कर उनको अपना पाठक तो बना लिया जो भारत-पाकिस्तान में दोस्ती चाहते हैं, पर यह प्रचार केवल प्रचार तक ही रह गया. इस पर कोई अमल नहीं हुआ. न तो टाइम्स ऑफ इंडिया एक क़दम चला और न ही जंग. इन अख़बारों ने दरअसल अपनी-अपनी सरकारों का बहाना लिया कि वे नहीं चाहतीं कि अमन की आशा पैदा हो. सवाल है कि क्या सचमुच सरकारें ऐसा चाहती हैं? अगर चाहती भी हों तो अख़बारों का और फिर पत्रकारिता का धर्म क्या है? सरकारों का भोंपू बजाना या जनता की आकांक्षाओं पर खरा उतरना? दरअसल भारत और पाकिस्तान के इन दोनों बड़े अख़बार समूहों ने जनता के साथ विश्वासघात किया है. साख खोती पत्रकारिता का यह बेशर्म उदाहरण है. पर आशा करनी चाहिए कि लोग खड़े होंगे और अमन की आशा को मुर्झाने नहीं देंगे.

टाइम्स ऑफ इंडिया ने भारत में और जंग ने पाकिस्तान में जनता को धोखा दिया है. उन्होंने इस अभियान को ठंडे बस्ते में डाल दिया है. उन्होंने इस अभियान का ज़ोर शोर से प्रचार कर उनको अपना पाठक तो बना लिया जो भारत-पाकिस्तान में दोस्ती चाहते हैं, पर यह प्रचार केवल प्रचार तक ही रह गया. इस पर कोई अमल नहीं हुआ. न तो टाइम्स ऑफ इंडिया एक क़दम चला और न ही जंग.

संपादक
editor@chauthiduniya.com

पेशावर में इस्लाम का क़त्लेआम हुआ

डॉ. शाह आलम खान

पाकिस्तान के पेशावर प्रांत में दो सिख युवकों को खुलेआम क़त्ल किए जाने की खबर मार्मिक भले हो, लेकिन आश्चर्यजनक कतई नहीं है. हिंसा और घृणा की खुराक़ पर पले-बढ़े तालिबान से भला हम और उम्मीद भी क्या कर सकते हैं. लेकिन इतना ज़रूर है कि इस घटना के बाद पाकिस्तानी सरकारी तंत्र के तालिबान के ख़तरे को नियंत्रित कर लेने संबंधी दावों की असलियत उजागर हो गई है.

तालिबान द्वारा अंजाम दिए गए इस नृशंस हत्याकांड के बाद मुझे जिस चीज ने सबसे ज़्यादा उद्वेलित किया, वह है उपमहाद्वीप (खासकर भारत में) मुस्लिम उलेमाओं की चुप्पी. आश्चर्य की बात यह है कि किसी भी महत्वपूर्ण मुस्लिम उलेमा ने इस घृणित कार्रवाई की निंदा नहीं की. वे सारे लोग कहां गए, जो किसी भी ऐसी बात की आलोचना करने से नहीं हिचकते, जो उन्हें ख़ुद अच्छी न लगती हो. भले ही वह इस्लाम और मुसलमानों के लिए कितनी ही अच्छी क्यों न हो. वे सारी आवाज़ें अचानक कहां गुम हो गईं, जो छोटे मुद्दों पर भी इस्लाम के ख़तरे में होने का शोर मचाने लगते हैं. इस घटना के बाद इस्लाम को लेकर जैसी टिप्पणियां देखने-सुनने को मिली हैं, इस धर्म के लिए उससे बड़ा ख़तरा और क्या हो सकता है. धर्म के ठेकेदार बने इन मुस्लिम उलेमाओं को यह बात कब समझ में आएगी कि ऐसी घृणित घटनाएं ही इस्लाम के लिए सबसे बड़ा ख़तरा हैं.

फिलीस्तीन में निर्दोषों का ख़ून बहता है तो चारों ओर मातम का माहौल छा जाता है. गुजरात में नरेंद्र मोदी के राजधर्म पर उंगलियां उठाने में ये थोड़ी भी देर नहीं लगाते. लेकिन जब धर्म के नाम पर ऐसी कट्टर और वहशी वारदातों को अंजाम देने वाले मुसलमानों की निंदा करने की बारी आई, तो उनकी ज़ुबानों पर ताला क्यों लग गया. तालिबान के घृणित कारनामों पर चुप

रहकर उलेमाओं का यह वर्ग दरअसल हिंसा को बढ़ावा देने वाले तत्वों को ज़ुबान दे रहा है. सोचने वाली बात है कि भविष्य में जब मोदी और शेरॉन जैसों के कुकृत्यों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का वक़्त आएगा, तो हम क्या तर्क देंगे? इससे भी अहम यह है कि हम देश में मुस्लिमों और कमज़ोर तबके के हित में आवाज़ उठाने वाले लोगों को क्या संदेश दे रहे हैं. क्या ऐसा नहीं लगता कि पीड़ित बन गया पीड़ा देने वाला तर्क हमें अब ठंडे बस्ते में डाल देना चाहिए.

तालिबान की चुनौती केवल सिख, यहूदी और हिंदुओं तक ही सीमित नहीं है. मध्ययुगीन बर्बरता का सहारा लेने वाला यह दकियानूसी संगठन वास्तव में इस्लामिक विचारधारा को खुलेआम चुनौती दे रहा है. दुनिया भर के ग़ैर-मुसलमान तो तालिबान से बचने के लिए कई रास्ते अख्तियार कर सकते हैं, लेकिन मुस्लिम समुदाय के पास क्या विकल्प हैं? वैश्विक समुदाय की बैठकों में इस्लाम की आलोचना से उनकी रक्षा कौन कर सकता है? कौन सी ऐसी दीवार है, जो सिखों के मन में मुसलमानों के ख़िलाफ़ फैलने वाले रोष और घृणा को रोक सकती है? ऐसी कौन सी ताक़त है, जो विदेशी हवाई अड्डों पर हर दाढ़ी वाले यात्री को शंका की नज़रों से देखने वाली निगाहों को रोक सकती है?

अधिकांश लोगों का मानना है कि तालिबान इस्लाम के वास्तविक स्वरूप को प्रदर्शित नहीं करता. इसमें संदेह की कोई गुंजाइश भी नहीं है, तालिबान किसी भी हालत में भारतीय उपमहाद्वीप के मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं करता. लेकिन, ताज्जुब की बात तो यह है कि कई ध्रुवों में बंटे इस विश्व में उसे इस्लाम के वास्तविक चेहरे के रूप में देखा जाने लगा है. मीडिया उसके पीछे लगा रहता है और सबसे दुखद बात तो यह है कि तालिबान खुद यह दावा करता है कि उसका क्रूर रवैया ही इस्लाम का वास्तविक चेहरा है. हम इसके खिलाफ कितने भी तर्क क्यों न दें, लेकिन यह सच है कि पश्चिमी देशों में रहने वाला हर सामान्य इंसान आज तालिबान को ही इस्लाम के प्रतिनिधि के रूप में देखता है.

यह कट्टरवादिता और उदारवाद, प्रेम और घृणा के बीच लगातार चलने वाली एक जंग का हिस्सा है. धर्म का यह क्रूर स्वरूप वास्तव में उपमहाद्वीप में प्रचलित उदारवादी इस्लामी विचारधारा के लिए एक दैत्याकार चुनौती है. इससे पहले कि यह दैत्य हमारे नियंत्रण से बाहर चला जाए, हमें इससे निबटने की तैयारी कर लेनी होगी. इसकी चुनौती से निबटने के कई तरीके हो सकते हैं. जैसे सैन्य ताकत, बातचीत और निंदा. जो कुछ भी संभव हो, हमें अपने हर हथियार का इस्तेमाल करना होगा. हम पहले ही एक हारी हुई बाजी लड़ने को मजबूर हैं. शुरुआत में अमेरिका और पाकिस्तान से मिले रणनीतिक समर्थन के बूते तालिबान आज बेहद ताकतवर बन चुका है. इससे मुकाबला करने के लिए उदारवादी मुस्लिम समाज को एकजुट होकर प्रतिबद्धता के साथ जंग के मैदान में उतरना होगा.

मेरा दिल उस बेचारे जसपाल सिंह के लिए रो रहा है, जिसे इस्लाम के कुछ तथाकथित पहरेदारों ने मौत के घाट उतार दिया. पठानी कुर्ता-पायजामा पहने और अल्लाह-ओ-अकबर का नारा बुलंद करती हुई लोगों की भीड़ के बीच जब उसकी हत्या की गई तो क्या हम उसके चेहरे पर उभरने वाले दर्द और खौफ की कल्पना कर सकते हैं. उन आखिरी लम्हों में उसके जेहन में क्या-क्या विचार आए होंगे? इस्लाम और उसे मानने वाले लोगों के खिलाफ कितनी घृणा उसके दिल में पैदा हुई होगी? उसका वह दर्द, उसका वह खौफ, जान बचाने के लिए उसकी आखिरी जद्दोजहद. और, यह सब इस्लाम के नाम पर! मुझे तो लगता है, नहीं, पूरा विश्वास है कि पेशावर में उस दिन जसपाल सिंह का कत्ल नहीं किया गया, बल्कि इस्लाम का कत्लेआम हुआ और हम सबको उसकी मौत का मातम मनाना चाहिए.

यह कट्टरवादिता और उदारवाद, प्रेम और घृणा के बीच लगातार चलने वाली एक जंग का हिस्सा है. धर्म का यह क्रूर स्वरूप वास्तव में उपमहाद्वीप में प्रचलित उदारवादी इस्लामी विचारधारा के लिए एक दैत्याकार चुनौती है. इससे पहले कि यह दैत्य हमारे नियंत्रण से बाहर चला जाए, हमें इससे निबटने की तैयारी कर लेनी होगी.

(लेखक एम्स में ऑर्थोपेडिक सर्जन हैं)

feedback@chauthiduniya.com

हाल में हुए एक अमेरिकी शोध के बाद यह बहस चलाई गई है कि रोबोट और क्लोनिंग को मान्यता मिलनी चाहिए या नहीं?

घूस को मारिए घूंसा

चौथी दुनिया सूचना का अधिकार क़ानून अभियान के ज़रिए अपने पाठकों को बता रहा है कि कैसे आरटीआई क़ानून का इस्तेमाल कर आम आदमी भ्रष्ट तंत्र पर नकेल कस सकता है. कैसे यह क़ानून आम आदमी की रोज़मर्रा की समस्याओं (सरकारी दफ़्तरों से संबंधित) का समाधान निकाल सकता है. वो भी, बिना रिश्वत दिए. बिना जी-हुजूरी किए. आपको बस अपनी समस्याओं के बारे में संबंधित विभाग से सवाल पूछना है. जैसे ही आपका सवाल संबंधित विभाग तक पहुंचेगा वैसे ही संबंधित अधिकारी पर क़ानूनी तौर पर यह ज़िम्मेवारी आ जाएगी कि वो आपके सवालों का जवाब दे. ज़ाहिर है, अगर उस अधिकारी ने बेवजह आपके काम को लटकाया है तो वह आपके सवालों का जवाब भला कैसे देगा. सवाल कैसे पूछना है, क्या पूछना है, यह आपको चौथी दुनिया बताएगा. अगर आपको इस क़ानून के इस्तेमाल से संबंधित कोई परेशानी हो, या कोई सुझाव चाहिए तो आप हमसे संपर्क कर सकते हैं.

इस देश में कई अच्छे क़ानून हैं लेकिन उनमें से कोई क़ानून कुछ नहीं कर सका. सूचना का अधिकार जैसा क़ानून क्या कर लेगा?

स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार कोई क़ानून किसी अधिकारी की अकर्मण्यता/लापरवाही के प्रति जवाबदेही तय करता है और इस क़ानून में आर्थिक दंड का भी प्रावधान है. यदि संबंधित अधिकारी समय पर सूचना उपलब्ध नहीं कराता है तो उस पर 250 रु. प्रतिदिन के हिसाब से सूचना आयुक्त द्वारा जुर्माना लगाया जा सकता है. यदि दी गई सूचना ग़लत है तो अधिकतम 25000 रु. तक का भी जुर्माना लगाया जा सकता है. जुर्माना आपके आवेदन को ग़लत कारणों से नकारने या ग़लत सूचना देने पर भी लगाया जा सकता है. यह जुर्माना उस अधिकारी के निजी वेतन से काटा जाता है.

क्या पीआईओ पर लगे जुर्माने की राशि आवेदक को दी जाती है?

नहीं, जुर्माने की राशि सरकारी खजाने में जमा हो जाती है. हालांकि अनुच्छेद 19 के तहत, आवेदक मुआवज़ा मांग सकता है.

यह क़ानून कैसे मेरे कार्य पूरे होने में मेरी सहायता करता है?

कोई अधिकारी क्यों अब तक आपके रुके काम को, जो वह

पहले नहीं कर रहा था, करने के लिए मजबूर होता है और कैसे यह क़ानून आपके काम को आसानी से पूरा करवाता है इसे समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं.

एक आवेदक ने राशन कार्ड बनवाने के लिए आवेदन किया. उसे राशन कार्ड नहीं दिया जा रहा था. लेकिन जब उसने आरटीआई के तहत आवेदन दिया. आवेदन डालते ही, उसे एक सप्ताह के भीतर राशन कार्ड दे दिया गया. आवेदक ने निम्न सवाल पूछे थे:

1. मैंने एक डुप्लीकेट राशन कार्ड के लिए 10 नवंबर 2009 को अर्जी दी थी. कृपया मुझे मेरी अर्जी पर हुई दैनिक प्रगति रिपोर्ट बताएं अर्थात मेरी अर्जी किस अधिकारी के पास कब पहुंची, उस अधिकारी के पास यह कितने समय रही और उसने उतने समय तक मेरी अर्जी पर क्या कार्रवाई की?

2. नियमों के अनुसार, मेरा कार्ड कितने दिनों के भीतर बन जाना चाहिए था. अब तीन माह से अधिक का समय हो गया है. कृपया उन अधिकारियों के नाम व पद बताएं जिनसे आशा की जाती है कि वे मेरी अर्जी पर कार्रवाई करते व जिन्होंने ऐसा नहीं किया?

3. इन अधिकारियों के विरुद्ध अपना कार्य न करने व जनता के शोषण के लिए क्या कार्रवाई की जाएगी? वह कार्रवाई कब तक की जाएगी?

4. अब मुझे कब तक अपना कार्ड मिल जाएगा?

आमतौर पर पहले ऐसे आवेदन कूड़ेदान में फेंक दिए जाते थे. लेकिन सूचना क़ानून के तहत दिए गए आवेदन के संबंध में यह क़ानून कहता है कि सरकार को 30 दिनों में जवाब देना होगा. यदि वे ऐसा नहीं करते हैं, उनके वेतन में कटौती की जा सकती है. ज़ाहिर है, ऐसे प्रश्नों का उत्तर देना अधिकारियों के लिए आसान नहीं होगा.

पहला प्रश्न है : कृपया मुझे मेरी अर्जी पर हुई दैनिक उन्नति बताएं.

कोई उन्नति हुई ही नहीं है. लेकिन सरकारी अधिकारी यह इन शब्दों में लिख ही नहीं सकते कि उन्होंने कई महीनों से कोई कार्रवाई नहीं की है. वरन यह काग़ज़ पर ग़लती स्वीकारने जैसा होगा.

अगला प्रश्न है : कृपया उन अधिकारियों के नाम व पद बताएं जिनसे आशा की जाती है कि वे मेरी अर्जी पर कार्रवाई करते व जिन्होंने ऐसा नहीं किया.

यदि सरकार उन अधिकारियों के नाम व पद बताती है, तो उनका उत्तरदायित्व निर्धारित हो जाता है. एक अधिकारी अपने विरुद्ध इस प्रकार कोई उत्तरदायित्व निर्धारित होने के प्रति काफ़ी सतर्क होता है. इस प्रकार, जब कोई इस तरह अपनी अर्जी देता है, उसका रुका कार्य संपन्न हो जाता है.

यदि आपने सूचना क़ानून का इस्तेमाल किया है और अगर कोई सूचना आपके पास है, जिसे आप हमारे साथ बांटना चाहते हैं तो हमें वह सूचना नीचे लिखे पते पर भेजें, हम उसे प्रकाशित करेंगे. इसके अलावा सूचना का अधिकार कानून से संबंधित किसी भी सुझाव या परामर्श के लिए आप हमें ई-मेल कर सकते हैं या पत्र भी लिख सकते हैं. हमारा पता है :

चौथी दुनिया
एफ-2, सेक्टर-11, नोएडा (गौतमबुद्ध नगर) उत्तर प्रदेश
पिन -201301
ई-मेल: rti@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

ज़रा हट के

हिंदी और सक्रिय दिमाग़!

पिछले कुछ समय में महाराष्ट्र में हिंदी भाषियों के साथ हुए अपमानजनक व्यवहार से तो आप वाक़िफ़ ही होंगे. इस मसले पर कई लोग तो यह भी सवाल उठाते हैं कि पूरे देश में हिंदी बोलने वाले नहीं है इसलिए इसको राष्ट्रभाषा का दर्ज़ा नहीं मिलना चाहिए. हिंदी के लिए इन नकारात्मक ख़बरों के बीच एक ख़बर ऐसी भी है जो राहत पहुंचाती है. आपको जानकर आश्चर्य होगा कि हिंदी पढ़ते समय दिमाग़ अधिक सक्रिय रहता है. ऐसा हम नहीं कह रहे हैं. राष्ट्रीय मस्तिष्क अनुसंधान केंद्र की साइंस मैग्जीन करंट साइंस में प्रकाशित एक शोध में ऐसा दावा किया गया है कि अगर आप हिंदी पढ़ रहे हैं तो आपका दिमाग़ अन्य भाषाओं की तुलना में ज़्यादा चुस्त दुरुस्त और सक्रिय रहेगा. इस शोध में ख़ुलासा किया गया है कि जब आप अंग्रेजी या अन्य कोई भाषा पढ़ रहे होते हैं तो दिमाग उतना दुरुस्त नहीं रहता है जितना कि हिंदी को पढ़ने और लिखने के दौरान होता है. पत्रिका की मानें तो अंग्रेजी पढ़ते समय दिमाग़ का सिर्फ़ बायां हैमिस्फेयर सक्रिय रहता है वहीं हिंदी पढ़ते समय मस्तिष्क के दोनों हैमिस्फैयर सक्रिय हो जाते हैं.

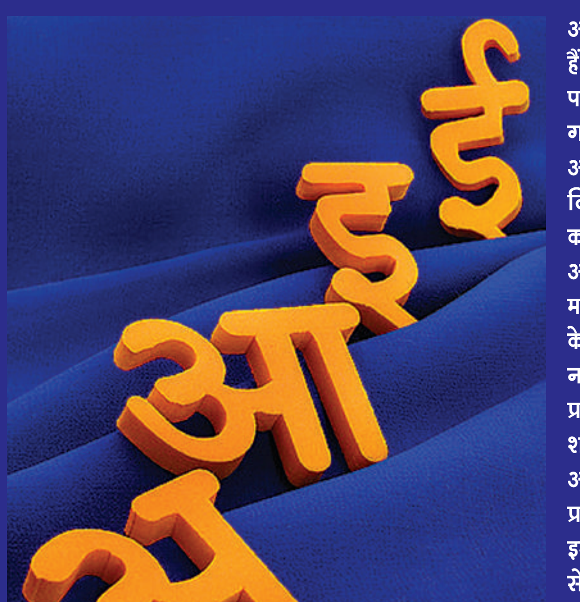

इन हैमिस्फेयर की सक्रियता ही दिमाग़ की क्रियाशीलता का निर्धारण करती है. जिसका परिणाम होता है कि दोनों हैमिस्फैयर आपके दिमाग़ को अपेक्षाकृत ज़्यादा एक्टिव रखते हैं और आप तरोताज़ा और एनर्जेटिक फील करते हैं. हैमिस्फैयर की सक्रियता के पक्ष में पत्रिका द्धारा किए गए शोध में तर्क दिया गया है कि हिन्दी के शब्दों में ऊपर, नीचे और दाएं-बाएं लगी मात्राओं के कारण, दिमाग़ को इसे पढ़ने में अधिक कसरत करनी पढ़ती है. जबकि इसके अलावा अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में इतनी मात्राएं नहीं होती हैं. दिमाग़ को तेज़ बनाने के लिए यूं तो हिंदी को पढ़ना भर काफ़ी नहीं है, बल्कि इसके लिए आपको नियमित प्रक्रिया में प्रक्रिया में कुछ एक्सरसाइज शामिल करने होंगे. मसलन आप हमेशा अपने पास कुछ कार्ड रखें जिनमें हिंदी के प्रसिद्ध मुहावरे और कहावते लिखी हों. इसके अलावा आप चाहे तो हिंदी डिक्शनरी से नियमित तौर पर कुछ शब्दों को डायरी में नोट करें. इस सबसे आपका भाषाई ज्ञान तो बढ़ेगा ही , आपका दिमाग़ भी राकेट की तरह तेज़ चलेगा और आप हमेशा एक्टिव रहेंगे. अगर आप टेक्नोसेवी हैं तो इंटरनेट पर जाकर हिंदी ब्लॉग भी शुरू कर सकते हैं. इससे आप स्वत: ही हिंदी लिखेंगे और पढ़ेंगे. ऐसे में अब अगर आपसे कोई कहे कि हिंदी ही क्यों? तो आपके पास इससे बेहतर जवाब और क्या हो सकता है!

मानव, तकनीक और रोबो क्लोनिंग

मशीन और इंसान को लेकर समाज में हमेशा ही बहस होती रही है. कुछ लोग मानते हैं कि मशीनों के आ जाने से इंसानों का काम आसान हुआ है. काम करने की स्पीड में कई गुना बढ़ोतरी हुई है. वहीं दूसरी ओर कुछ लोगों का मानना है कि मशीनों का उपयोग वहीं तक ठीक है, जब तक वे इंसानों की मदद करती हैं. लेकिन जब मशीनों को इंसान के विकल्प के तौर पर पेश किया जाता है, तब मामला ख़राब हो जाता है. दरअसल हाल ही में हुए एक अमेरिकी शोध के बाद यह बहस चलाई गई है कि रोबोट और क्लोनिंग को मान्यता मिलनी चाहिए या नहीं? ऐसे में अधिकतर लोगों का जवाब हां में था.

पत्रिका का कहना है कि ज़्यादातर लोग मानते हैं कि रोबोट और क्लोनिंग को मान्यता देने से आम जनजीवन में लोगों को बहुत मदद मिलेगी. इससे समय की बचत होगी और विकास कार्यों में बढ़ोतरी के लिए इस समय का उपयोग किया जा सकेगा. इस बहस को हवा दी एक हॉलीवुड फ़िल्म सरोगेट्स ने. इस फ़िल्म में दिखाया गया है कि कोर्ट की अनुमति मिलने के बाद डॉक्टर सरोगेसी के तहत लोगों का रोबोक्लोन बना रहे हैं. इससे सभी इंसान अपने मानसिक प्लानिंग के ज़रिए अपने अपने घरों में कैद हो चुके हैं और उनके रोबोक्लोन बाक़ी दुनिया में सारा काम कर रहे हैं. इंसान अपने अंदर कैद होकर आज जिस अवस्था में जी रहा है, उससे अलग सहूलियत के लिए वह मनपसंद शरीर और लुक के साथ बाहरी जीवन में मशीनी काम कर रहा है. लोगों में भावनात्मक लगाव ख़त्म होता जा रहा है. इसलिए लोग आवाज़ उठाते हैं कि रोबो सिस्टम बंद किया जाए.

इसी तर्ज पर आज की नई पीढ़ी भी कंप्यूटर और गैजेट के साथ रहते रहते मशीनी होती जा रही है, परिवार और रिश्तों में दूरी बढ़ती जा रही है. इसलिए पत्रिका के शोध में निष्कर्ष निकालते हुए कहा गया है कि मानवता और संबंधों के महत्व को बरक़रार रखने के लिए यह तकनीकी जीवनशैली कतई भी ठीक नहीं है.

राशिफल

8 मार्च-14 मार्च 2010

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल): दूसरों से सहयोग लेने में सफल होंगे. आर्थिक पक्ष मज़बूत होगा. नए अनुबंध प्राप्त होंगे. अचानक कहीं यात्रा का योग बन सकता है. जीविका के क्षेत्र में प्रगति होगी. पारिवारिक जीवन सुखमय होगा. किसी कार्य के संपन्न होने से आत्मविश्वास में वृद्धि होगी.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई): मांगलिक कार्यों की दिशा में किया जा रहा प्रयास सफल साबित होगा. पारिवारिक प्रतिष्ठा बढ़ेगी. वाणी में मधुरता बनाएं रखें. निजी संबंधों में निकटता आएगी. उपहार या सम्मान का लाभ मिलेगा.

मिथुन (21 मई से 20 जून): व्यावसायिक प्रयास फलीभूत होगा. संबंधों में मधुरता आएगी. आय के नए अवसर प्राप्त होंगे. पारिवारिक जीवन सुखमय होगा, भागदौड़ रहेगी. जीवनसाथी का सहयोग और प्रगाढ़ता में वृद्धि होगी. स्वास्थ्य पर ध्यान अवश्य ध्यान दें.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई): पेट की बीमारियों से पीड़ित व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें. व्यर्थ की परेशानी व उलझनें रहेगी. भावुकता पर नियंत्रण रखें. व्यावसायिक मामलों में सफलता मिलेगी. पारिवारिक जीवन सुखमय होगा.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त): दांपत्य सुख भरपूर मिलेगा. निजी संबंधों में प्रगाढ़ता आएगी. पारिवारिक दायित्व की पूर्ति होगी. शिक्षा प्रतियोगिता के क्षेत्र में चल रहे प्रयास फलीभूत होंगे. किसी कार्य के संपन्न होने की संभावना है, यात्रा सुखद होगी.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर): व्यावसायिक व्यस्तता बढ़ेगी. राजनैतिक सहयोग मिल सकता है. मातृपक्ष से तनाव मिलेगा. संतान के दायित्व की पूर्ति होगी. संबंधों में निकटता आएगी. उपहार या सम्मान का लाभ मिलेगा. संतान के संबंध में सुखद समाचार प्राप्त हो सकता है.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर): व्यावसायिक प्रतिष्ठ बढ़ेगी, भागदौड़ जारी रहेगी. निजी संबंध प्रगाढ़ होंगे. शासन सत्ता से सहयोग मिलेगा. पारिवारिक दायित्व की पूर्ति होगी. उपहार या सम्मान का लाभ मिलेगा. जीविका के क्षेत्र में प्रगति होगी.

वृश्चिक (21 अक्टूबर से 20 नवंबर): ससुराल पक्ष का सहयोग मिलेगा. भौतिक दिशा में प्रगति होगी. पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति होगी. ईश्वर के प्रति आस्था रहेगी. किसी अधीनस्थ या संबंधित अधिकारी का सहयोग प्राप्त हो सकता है.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर): अज्ञात भय तनाव दे सकता है. स्वास्थ्य और आचरण को प्रभावित करेगा. काफ़ी समय से रुका हुआ कोई कार्य पूरा हो जाएगा जिसके कारण आप बहुत प्रसन्न रहेंगे. आठ-दस मछली बहते हुए जल में डालें.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी): उदर विकार या त्वचा के रोग की आशंका है. आर्थिक मामलों में सावधानी अपेक्षित है. पारिवारिक सुख की अनुभूति होगी. जीविका के क्षेत्र में सफलता मिलेगी. किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहें हैं तो उसमें सफलता के योग बने हुए हैं. धन, सम्मान में वृद्धि होगी.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी): उपहार या सम्मान का लाभ मिलेगा. यात्रा देशाटन का लाभ मिलेगा. पारिवारिक सुख में वृद्धि होगी. संबंधों में निकटता आएगी. किसी कार्य के संपन्न होने से जीविका के क्षेत्र में प्रगति होगी.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च): मैत्री संबंध प्रगाढ़ होंगे. पारिवारिक सुख मधुर होगा. भौतिक दिशा में चल रहे प्रयास फलीभूत होंगे. रचनात्मक दिशा में किया जा रहा प्रयास सफल साबित होगा. बहुप्रतीक्षित कार्य संपन्न होगा, जिससे आत्मविश्वास में वृद्धि होगा.

पंडित सुदर्शन
feedback@chauthiduniya.com

मीडिया के आधुनिक हथियारों से लैस ये लोग आधुनिक समय में एक नए राष्ट्र दर्शन के निर्माण की कोशिश में लगे हैं.

जरदारी के पास ज़्यादा विकल्प नहीं

ख़बरों पर भरोसा करें तो पाकिस्तान के प्रधानमंत्री यूसुफ़ रजा गिलानी ने अपने विश्वस्त सहयोगियों को बता दिया है कि वह अब फिर कभी राष्ट्रपति आसिफ़ अली जरदारी के बचाव में मैदान में नहीं उतरेंगे. हालांकि इस ख़बर में कितनी सच्चाई है, यह पता करना ख़ासा मुश्किल है, लेकिन इसके बाद के हालात पर ग़ौर करें तो इस पर संदेह की कोई गुंजाइश भी नहीं दिखती. हो सकता है कि अपने इरादों में मिली नाकामी से तिलमिलाए राष्ट्रपति लड़ाई के अगले दौर की तैयारी में लगे हों, लेकिन शायद वह समय आ चुका है, जब वह ऐसी तैयारी से दूर रहकर अपनी करनी पर ग़ौर करें और अच्छे सलाहकारों की बात सुनें. जरदारी विकल्पों को लेकर उधेड़बुन में हैं कि आख़िर क्या किया जाए, जिससे पीपीपी सरकार को नई ज़िंदगी मिले.

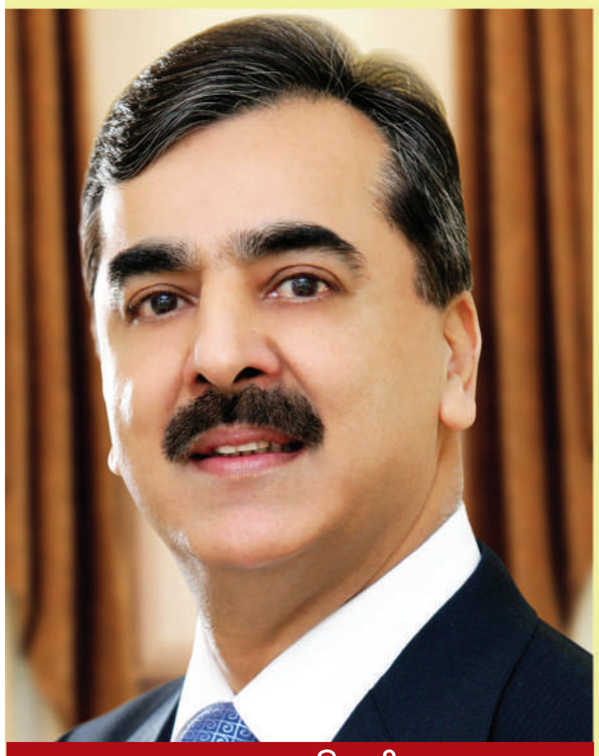

यूसुफ़ रजा गिलानी

संवैधानिक प्रावधानों और देश के क़ानून के ख़िलाफ़ काम करने की जो ग़लती जरदारी ने की थी, उससे बचना इतना आसान नहीं था, लेकिन 17 फरवरी को एक आश्चर्यजनक घटनाक्रम में उनके बचाव में उतर कर गिलानी ने पीपीपी सरकार को थोड़ी मोहलत दिला दी. हैरत की बात है कि क़ानून के ख़िलाफ़ जाने की ऐसी मूर्खतापूर्ण ग़लती जरदारी पहले भी कर चुके हैं. कई बार ऐसा देखने को मिला है, जब राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर राष्ट्रपति जरदारी और प्रधानमंत्री अलग-अलग जुबान बोल रहे हों. एनआरओ, कैबिनेट में बदलाव, न्यायपालिका के साथ संबंध, मीडिया और व्यवस्था से जुड़े तमाम ऐसे वाकये हैं, जिन पर दोनों नेताओं के बीच मतैक्य देखने को नहीं मिला है. अब तक गिलानी अपने बॉस के हर फ़ैसले को मानते रहे हैं, लेकिन जरदारी के कई फ़ैसलों का परिणाम उल्टा रहा है. नतीजा यह हुआ है कि पीपीपी की सरकार एक ओर जहां अपने गठबंधन में साझीदार दलों के साथ लुकाछिपी का खेल खेलती रही है, वहीं दूसरी ओर सत्ता के अन्य केंद्रों के साथ भी उसका बार-बार टकराव हुआ है.

पीपीपी के साथ सबसे बड़ी समस्या सत्ता का दोहराव और निर्देश में एकता का अभाव है. पार्टी यदि लोकतांत्रिक ढंग से सरकार चलाना चाहती है तो ज़रूरी है कि सत्ता का सूत्र प्रधानमंत्री के हाथ में रहे. लेकिन अब तक अधिकांश मौक़ों पर वह जरदारी के पीछे खड़े नज़र आए हैं. हर दूसरे दिन अख़बारों और टीवी चैनलों पर दिखने वाली आराम से बैठे राष्ट्रपति की तस्वीरें भी यही कहानी बयां करती हैं. महत्वपूर्ण निर्णयों के मामले में यह उम्मीद की जाती है कि संसदीय व्यवस्था के मुताबिक़ उक्त फ़ैसले प्रधानमंत्री के निर्देश पर उनके कार्यालय में लिए जाएंगे और उनमें राष्ट्रपति से औपचारिक सहमति ली जाएगी. लेकिन होता इसका ठीक उल्टा है. विवादित मामलों में आदेश राष्ट्रपति द्वारा दिए जाते हैं और बाद में यह बताया जाता है कि इसमें प्रधानमंत्री की सहमति ली गई है. जरदारी के लिए यह शायद आख़िरी मौक़ा है कि वह इसमें बदलाव करें और पीपीपी सरकार को सत्ता में बने रहने का एक मौक़ा दें. पीएमएल-एन के साथ बातचीत की प्रक्रिया को तेज़ी से आगे बढ़ाने के मामले में गिलानी को पूरी छूट देकर जरदारी ने अच्छा काम किया है.

गिलानी शायद पीपीपी की आख़िरी उम्मीद हैं. कामयाबी के लिए ज़रूरी बुद्धिमत्ता और धैर्य उनके पास है. उन्होंने यह साबित किया है कि सत्ता के अन्य दावेदारों के साथ मिलकर काम करने की क़ाबिलियत उनके पास है, लेकिन वह बार-बार ऐसा नहीं कर पाएंगे, यदि काम करने की पूरी स्वतंत्रता उनके पास नहीं होगी. संसदीय व्यवस्था में ज़रूरी है कि राष्ट्रपति पृष्ठभूमि में रहे. प्रजातंत्र में सत्ता का यह ढुलमुल रवैया ज़्यादा दिनों तक नहीं चल सकता और जितनी जल्दी जरदारी इस बात को समझ जाएंगे, पद पर बने रहने के लिहाज़ से उनके लिए उतना ही अच्छा होगा. गिलानी के लिए भी यह काम इतना आसान नहीं होगा. पीएमएल-एन को सरकार में शामिल होने पर राजी करने के लिए उन्हें ढेर सारा विश्वास दिखाना होगा. विश्वास से बढ़कर उन्हें पीएमएल-एन को यह भरोसा दिलाना होगा कि सत्ता की चाबी वास्तव में उनके हाथ में है. प्रजातांत्रिक व्यवस्था का मतलब असंभव को संभव बनाने की कला है, जो तभी संभव है, जब सभी संबद्ध पक्षों के साथ ईमानदारी से बातचीत की जाए और उन्हें सत्ता में साझीदारी के लिए तैयार किया जाए. गिलानी के पास यही एक उपाय है और उन्हें ऐसा ही करना होगा. लोकतंत्र के लिए भी शायद यही एक विकल्प बचा है. 15 करोड़ लोगों की उम्मीदें भी इसी पर टिकी हैं कि सुशासन के लिए एक संतुलित और नियमित व्यवस्था का विकास होगा. यह तभी संभव हो सकता है, जब दोनों बड़ी पार्टियों के बीच मतैक्य हो और व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए दोनों मिलकर ईमानदार प्रयास करें.

गिलानी शायद पीपीपी की आख़िरी उम्मीद हैं. कामयाबी के लिए जरूरी बुद्धिमत्ता और धैर्य उनके पास हैं. उन्होंने यह साबित किया है कि सत्ता के अन्य दावेदारों के साथ मिलकर काम करने की काबिलियत उनके पास है, लेकिन वह बार-बार ऐसा नहीं कर पाएंगे, यदि काम करने की पूरी स्वतंत्रता उनके पास नहीं होगी.

पीपीपी को यह भी ध्यान में रखना होगा कि उसके साझीदार दल वक़्त-बेवक़्त मुश्किलें खड़ी करते रहेंगे और अपने समर्थन की क़ीमत भी किस्तों में मांगेंगे. ये पार्टियां पहले भी ऐसा करती रही हैं. पिछले दो सालों में इस सरकार की सारी ऊर्जा ऐसी मुश्किलों को दूर करने में ही ख़र्च हुई है. हालांकि अब तक सारी नाकामियां राष्ट्रपति कार्यालय के मत्थे ही मढ़ी जाती रही हैं. अब यदि आने वाले दिनों में पीपीपी सरकार को बने रहना है तो जरदारी को परदे के पीछे रहकर अपनी भूमिका निभानी होगी, ताकि गिलानी पीएमएल-एन के साथ मिलकर सरकार की गाड़ी जब तक संभव हो, खींच सकें और राष्ट्रपति के बचाव के लिए थोड़ी मोहलत हासिल करने में कामयाब हों. जरदारी के लिए यह आख़िरी मौक़ा है और एकमात्र विकल्प भी. यदि वह अपनी बात पर अड़े रहते हैं तो यह मौक़ा भी उनके हाथ से निकल जाएगा. जरदारी के कार्यकाल में लोकतंत्र एक मज़ाक बनकर रह गया है. जबकि उन्हें लगता है कि उनके सत्ता से दूर होते ही विध्वंसकारी ताक़तें इस पर क़ब्ज़ा कर लेंगी. वास्तविकता यह है कि जरदारी की यह सोच ही ग़लत है.

आसिफ अली जरदारी

राष्ट्रपति को यह मानना होगा कि संसदीय लोकतंत्र एक लगातार विकसित होने वाली प्रक्रिया है. यदि वह अपनी ही उलझनों में उलझे रहे और कुछ हासिल न कर पाए तो यह तय है कि पीपीपी जल्द ही राष्ट्रीय असेंबली में बहुमत खो देगी. लोकतंत्र यदि किसी एक आदमी की जागीर बनकर रह जाए तो उसे वास्तविक लोकतंत्र नहीं कहते. और, यह ज़्यादा दिनों तक चल नहीं सकता. जैसा कि हम सभी जानते हैं कि समय का प्रवाह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता और जितनी जल्दी हो सके, जरदारी को अपने क़दम पीछे खींचने होंगे.

एम ए के लोधी
feedback@chauthiduniya.com

पाकिस्तान का जिन्ना कहीं खो गया है

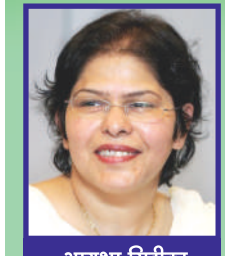

आयशा सिद्दीका

कुछ दिनों पहले मुझे अर्देशिर कोवासजी का एक आलेख ब्रिंग बैक जिन्नाज पाकिस्तान पढ़ने का मौक़ा मिला, जिसमें उन्होंने राष्ट्र के प्रति जिन्ना के उदारवादी विचारों की चर्चा की थी. कोवासजी का यह दावा है कि यदि पाकिस्तान जिन्ना के बताए रास्ते पर चलता तो देश की सामाजिक दशा मौजूदा हालात से कहीं अलग होती. लेकिन मैं उन्हें बताना चाहूंगी कि जिन्ना के पाकिस्तान की तलाश करते-करते कहीं हम पाकिस्तान के जिन्ना को ही न खो दें. हाल ही में मेरे एक पत्रकार मित्र को जिन्ना की एक पुरानी तस्वीर देखने को मिली, जिसमें वह अपने प्रिय पालतू कुत्ते को गोद में लिए नज़र आते हैं. राहत की बात यह है कि उन्हें यह तस्वीर किसी दोस्त ने तोहफ़े में दी थी. नहीं तो अभी जो हालात हैं, उन्हें देखते हुए कोई आश्चर्य नहीं कि तोहफ़ा देने वाले को ऐसी तस्वीरों के प्रचार के इल्ज़ाम में एक विदेशी एजेंट घोषित कर दिया जाता. हमें इस पर भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए, यदि आने वाले कुछ सालों में ऐसे लोग अपनी बात मनवाने के लिए जिन्ना की ऐसी तस्वीरें प्रचारित करें, जिनमें वह बड़ी-बड़ी दाढ़ी में और पगड़ी पहने दिखें. मौजूदा दौर में कुछ ऐसी ताक़तें हैं, जो जिन्ना के व्यक्तित्व और उनकी बातों को तोड़-मरोड़ कर पेश करने की कोशिश में लगी हैं. हमें बार-बार यह घुट्टी पिलाने की कोशिश की जा रही है कि जिन्ना को पश्चिमी उदारवादी संस्कारों का समर्थक बताना और कुछ नहीं, बल्कि एक साजिश है. हमें बताया जा रहा है कि जिन्ना की जीवनशैली में ऐसी कोई बात नहीं थी, जो देश की बहुसंख्यक धर्म-प्रधान आबादी को मंजूर न हो.

जिन्ना के व्यक्तित्व को इस तरह पेश करने का एकमात्र उद्देश्य वास्तव में राष्ट्र के चरित्र को बदलने की दिशा में पहला क़दम है. इस प्रयास में अगला तर्क यह हो सकता है कि जिन्ना की कल्पना एक ऐसे राष्ट्र की थी, जिसमें विचारों की स्वतंत्रता नहीं हो और विरोधी विचारधारा वाले लोगों को दूसरे दर्ज़े का नागरिक माना जाए या फिर उन्हें जेलों में कैद कर दिया जाए. सोचने वाली बात यह है कि जिन्ना का यह उदारवादी चरित्र इन लोगों के गले क्यों नहीं उतर रहा. यह हो सकता है कि क़ायदे आजम ने अपने उदारवादी रवैये को छुपाकर रखा हो, क्योंकि उनका प्राथमिक उद्देश्य भारत के मुसलमानों के लिए एक अलग राष्ट्र का निर्माण करना था. लेकिन, उन्होंने कभी अपनी हक़ीक़त को छुपाने की कोशिश नहीं की. अधिकांश लोगों की सोच के विपरीत जिन्ना हमेशा यह मानते थे कि पाकिस्तान में अलग-अलग धर्म, जाति और विचारधारा के लोग एक साथ रह सकते हैं. भारतीय मुसलमानों का संघर्ष इस पर केंद्रित नहीं था कि वे एक संस्कृति को छोड़ दूसरी के पराधीन होकर रह जाएं. जिन्ना पाकिस्तान को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में देखते थे, जिसमें अलग-अलग धर्मों के लोग एक साथ आराम से रह सकें.

जिन्ना के व्यक्तित्व को इस तरह पेश करने का एकमात्र उद्देश्य वास्तव में राष्ट्र के चरित्र को बदलने की दिशा में पहला कदम है. इस प्रयास में अगला तर्क यह हो सकता है कि जिन्ना की कल्पना एक ऐसे राष्ट्र की थी, जिसमें विचारों की स्वतंत्रता नहीं हो और विरोधी विचारधारा वाले लोगों को दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाए या फिर उन्हें जेलों में कैद कर दिया जाए.

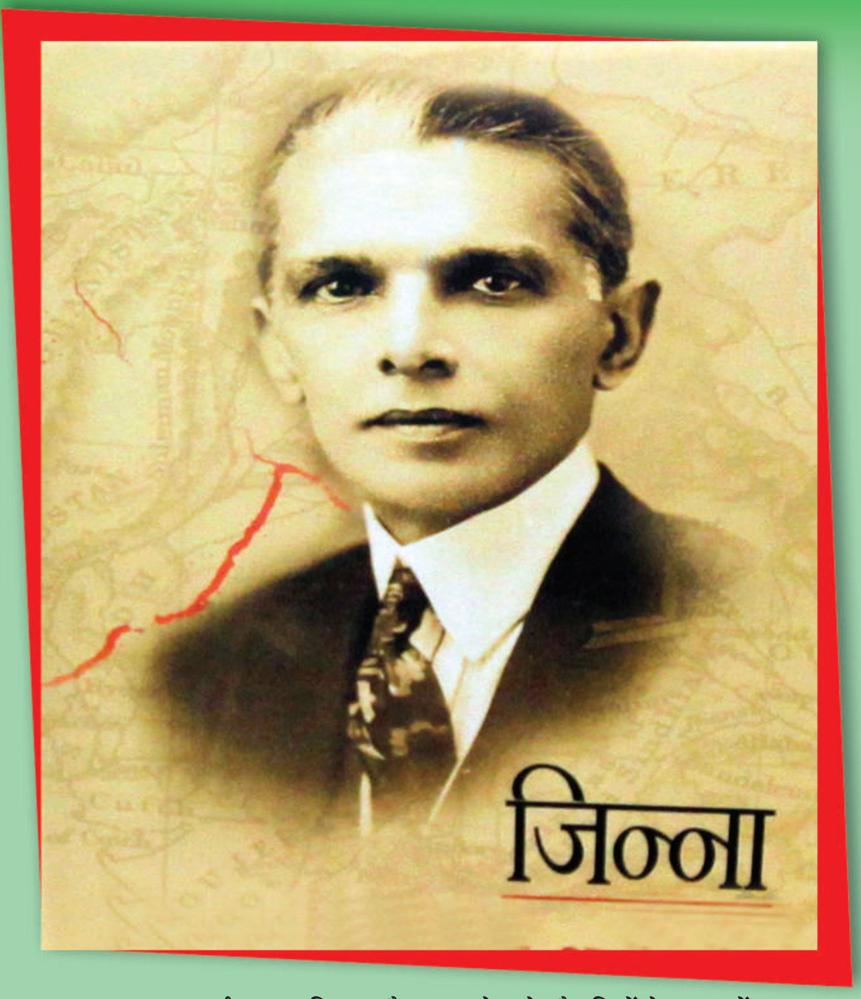

वर्ष 1948 में एक भाषण देते हुए उन्होंने कहा था, हमें जो सोच और संस्कार विरासत में मिले हैं, हम उनसे अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं और पाकिस्तान के नए संविधान और भविष्य के निर्माण की जो ज़िम्मेदारी हमारे कंधों पर है, हम उसकी अहमियत भी समझते हैं. मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि हम पाकिस्तान को एक ऐसा धार्मिक राष्ट्र नहीं बनाना चाहते, जो मौलवियों के फ़रमानों पर चले. हमारे यहां ग़ैर-मुस्लिम लोग भी हैं-हिंदू, ईसाई, पारसी आदि. लेकिन, वे सभी पाकिस्तानी हैं. उन्हें वे सभी अधिकार हासिल होंगे, जो देश के अन्य नागरिकों के लिए हैं और राष्ट्र निर्माण के काम में उनकी भी समान भागीदारी होगी.

मीडिया के आधुनिक हथियारों से लैस ये लोग आधुनिक समय में एक नए राष्ट्र दर्शन के निर्माण की कोशिश में लगे हैं. उनका मानना है कि पाकिस्तान के बने रहने के लिए मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था का सुचारू संचालन ज़रूरी नहीं है. इसकी जगह वे ऐसी व्यवस्था की कल्पना करते हैं, जिसमें सारी बुराइयां ख़ुद ही दूर हो जाएंगी. पुरातनपंथी विचारधारा पर आधारित यह राजनीतिक व्यवस्था ख़िलाफ़त की आदर्श अवस्था होगी और देश की हालत में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने में कारगर होगी. ये तालिबान से जुड़े लोग नहीं हैं, न ही इनका कोई संगठित रूप है. व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर सक्रिय ये लोग अलग-अलग तरीक़ों से अपना काम कर रहे हैं. इनमें कुछ लोग ऐसे हैं, जो पारंपरिक धार्मिक व्यवस्था के पक्षधर हैं तो कुछ लोगों की विचारधारा धर्म निरपेक्ष है. कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो एक ओर तो राष्ट्रवाद पर लंबे-लंबे भाषण देते हैं और दूसरी ओर पश्चिमी देशों की उदारवादी आधुनिक विचारधारा को अपनाते हैं.

राष्ट्रीय विचारधारा और दर्शन को बदलने की इस साजिश का अहसास बहुत कम ही लोगों को है. नए राष्ट्र की इस विचारधारा का प्रमुख आधार धर्म और इतिहास की परंपरावादी व्याख्या है. इस प्रक्रिया में राष्ट्र के स्वरूप में बदलाव हो रहे हैं और नई राष्ट्रवादी विचारधारा की चुनौतियों से निबटने के लिए समाज को भी तैयार करने की कोशिश हो रही है. कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस नई व्यवस्था में उन लोगों के लिए कोई जगह नहीं है, जो आदर्श नागरिकों की श्रेणी में नहीं आते. इसमें देश के घोषित दुश्मनों के लिए तो कोई जगह नहीं ही है, साथ ही ऐसे लोगों के लिए भी मुश्किलें हो सकती हैं, जो अलग जाति, धर्म, रंग या विचारधारा को मानते हैं. बड़े दु:ख के साथ मैं कोवासजी को यह बताना चाहती हूं कि आदर्श नागरिक की इस परिभाषा में लोगों के अधिकारों का निर्धारण उनके धर्म के आधार पर होता है और इसकी व्याख्या का दायित्व कुछ गिने-चुने लोगों पर होता है. यह मसला अब बहुलवादी राष्ट्र और बहुध्रुवीय समाज के दायरे से काफ़ी आगे बढ़ चुका है. राष्ट्र दर्शन की इस नई व्याख्या को अमलीजामा पहनाने के लिए पाकिस्तान के जिन्ना को हमारी नज़रों से दूर करना, अपहृत करना इन लोगों के लिए निहायत ज़रूरी है. क्या हमारे माननीय मित्र और लेखक देश के संस्थापक को वापस लाने के लिए कुछ कर सकते हैं? यदि वे इसके लिए प्रयास करें तो कोई संदेह नहीं कि कई लोग इस संघर्ष में उनके साथ खड़े होंगे.

feedback@chauthiduniya.com

शिरडी की द्वारका माई में रहते हुए मैंने हर पल अंधविश्वास और हरेक धार्मिक ढकोसले का पुरज़ोर विरोध किया.

मालिक एक साईचरणों में मेरी पुष्पांजलि है : दीपक बलराज विज

विकास कपूर

अपने ज़माने के मशहूर एक्टर स्व. बलराज साहब (वचन, पहला आदमी, चालीस बाबा एक चोर फेम) के पुत्र दीपक बलराज विज बहुआयामी प्रतिभा के धनी हैं. लेखन, निर्देशन और निर्माता की ज़िम्मेदारी एक साथ निभाने वाले दीपक जी ने कई सफल फ़िल्मों का निर्माण और निर्देशन किया जिनमें कहां है क़ानून (1989), हफ्ता बंद (1991), बम-ब्लास्ट (1993), जख्मी इंसान (1194), सैलाब (1196), जान तेरे नाम (1997), शीला (1198), आया तूफ़ान (1199) आदि प्रमुख है. डिस्को डांसर के लेखन का श्रेय भी दीपक जी को जाता है. सन् 2002-2003 में दीपक जी ने ऑसिम खेत्रपाल की फ़िल्म शिरडी साई बाबा का निर्देशन किया. इस फ़िल्म को तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम श्री के.आर. नारायनन ने राष्ट्रीय एकता के गौरवपूर्ण पुरस्कार से सम्मानित किया. इन दिनों दीपक जी अपनी नई फ़िल्म मालिक एक के प्रमोशन में व्यस्त हैं. दीपक जी के भीतर साईभक्ति कूट-कूटकर भरी है. विकास कपूर ने उनकी साई भक्ति पर विस्तृत बात-चीत की, जिसके कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं.

दीपक जी! सबसे पहले यह बताइए कि आप को साईकृपा अथवा साईभक्ति की दीक्षा कब और कैसे मिली?

साईबाबा के विषय में मैं बचपन से ही जानता था लेकिन सबसे पहले साईबाबा की दीक्षा मुझे दिल्ली में ऑसिम खेत्रपाल के घर पर मिली. मैं ऑसिम के साथ भारत-पाकिस्तान बंटवारे पर एक फ़िल्म फ्रंटियर के निर्माण की रुपरेखा बना रहा था परंतु बात कुछ जम नहीं रही थी. इस बीच मैं पहली बार ऑसिम के घर दिल्ली गया जो वास्तव में घर नहीं एक छोटा सा शिरडी था. चारों तरफ़ साईबाबा की तस्वीरें, साई की महिमा देखकर मैंने ऑसिम को सुझाव दिया क्यों न साईबाबा के चरित्र पर फ़िल्म बनाई जाए और ऑसिम तुरंत तैयार हो गए. इस फ़िल्म का निर्माण करते-करते मैं बाबा के बहुत समीप आ गया और मुझे उनके विराट चरित्र का अनुभव हुआ. सच कहा जाए तो उसके बाद मैं और मेरा जीवन साईमय हो गया.

दीपक बलराज, जैकी श्रॉप के साथ (दाएं)

शिरडी साईबाबा फ़िल्म के पहले आप अधिकतर एक्शन फ़िल्में बनाया करते थे परंतु उसके बाद आपने उस तरह की फ़िल्मों पर काम करना लगभग बंद कर दिया क्यों?

मन ही नहीं होता है विकासजी, मुझे लगता है मैं अब जब भी फ़िल्म बनाऊं तो केवल अपने साईबाबा के चरित्र पर ही बनाऊं. बाबा का चरित्र इतना अधिक प्रेरक है कि समाज के हर वर्ग तक इसको पहुंचना ही चाहिए.

साईबाबा के जीवन पर पहले भी कई फ़िल्मों का निर्माण हो चुका है आपकी नई फ़िल्म मालिक एक के बारे में कुछ बताईए?

इस फ़िल्म में दर्शक साईबाबा के सर्वथा नए स्वरुप का दर्शन करेंगे. अब-तक साईबाबा पर बनी फ़िल्मों में जो लीक थी, उससे ज़रा हटकर मैंने मालिक एक का निर्माण किया है. इस फ़िल्म में साईबाबा एक मलंग की तरह पैरों में घुंघरु बांधकर नाचते भी हैं. भक्ति से भाव-विभोर होकर गाते भी हैं और भक्तों पर कृपा तो करते ही हैं.

पहली बार इस फ़िल्म में जैकी श्रॉफ, साईबाबा का चरित्र निभा रहे हैं. उनके अभिनय के बारे एक निर्देशक के रुप में आपका अनुभव कैसा रहा?

जैकी एक बेहतरीन अदाकार हैं. भावपूर्ण दृश्यों में उनका अभिनय कमाल का है, उनकी संवाद अदायगी और परफॉर्मेंस देखकर ऐसा लगता है जैसे शिरडी के साईबाबा ही जीवंत होकर अभिनय कर रहे हों. यह फ़िल्म जैकी ही नहीं मेरे जीवन की भी उत्कृष्ट फ़िल्म है.

आपकी पिछली फ़िल्म शिरडी साईबाबा में साई का चरित्र सुधीर दलवी ने निभाया था, मालिक एक में जैकी साहब ने वही चरित्र निभाया है दोनों की तुलना आप किस प्रकार करते हैं?

सुधीर ने भी बहुत अच्छा काम किया था परंतु उनका काम मेरी इस फ़िल्म के लिए थोड़ा टाईप्ड लग रहा था इसलिए मुझे किसी और की ज़रुरत थी. मैंने अपने शिरडी प्रवास के दौरान साईबाबा की वास्तविक तस्वीरें देखी हैं. उन्हें देखने के बाद मुझे जैकी के चेहरे में वह संभावना दिखाई दी और जैकी ने मालिक एक में शानदार अभिनय किया वे बिल्कुल साईबाबा ही लगते हैं.

अगले अंक में
बप्पी लाहिड़ी के साई अनुभव

भक्ति की शक्ति

मुंबई के मनु गिडवानी साईबाबा के अनन्य भक्त हैं. कई वर्ष पहले मनु अपनी पांच साल की बेटी बॉबी के साथ शिरडी गए. बाबा के दर्शन के बाद बॉबी की ज़िद पर मनु ने साईबाबा की एक मूर्ति को ख़रीद ली परंतु असावधानी के कारण बॉबी से उस मूर्ति की नाक टूट गई जिससे खिन्न होकर मनु ने बॉबी की पिटाई कर दी. मन में शकुन-अपशकुन पर विचार करने के बाद मनु गिडवानी ने बिल्कुल वैसी ही एक और मूर्ति ख़रीद ली. मुंबई आने के बाद उन्होंने मूर्ति देखी तो हैरान रह गए क्योंकि बाबा की दूसरी मूर्ति भी बिल्कुल उसी जगह (नाक) से टूटी थी. उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि बाबा क्या कहना चाह रहे हैं? परंतु श्रद्धा से आई मूर्ति के खंडित हो जाने से मनु और सीमा का मन किसी अनजानी आशंका से घबरा रहा था. उस रात मनु ने खाना भी नहीं खाया और साईबाबा से कृपा की प्रार्थना करते रहे.

लगभग तीन बजे रात के समय साईबाबा ने मनु से स्वप्न में पूछा कि दूसरी मूर्ति तो तुम संभालकर लाए थे फिर भी वह टूट गई तो तुमने जो सजा अपनी फूल सी बच्ची को दी वह ख़ुद को क्यों नहीं दी? मनु के माफी मांगने पर बाबा ने कहा जल्दबाज़ी में उस फूल सी बच्ची पर हाथ उठाकर तुमने मुझे दुःख पहुंचाया है, बच्चे तो भगवान का रूप हैं, वो सज़ा देने के लिए नहीं सिर्फ़ प्यार करने के लिए होते हैं. मनु! जो बच्चों को सताता है वो वास्तव में मुझे ही सताता है. साईबाबा की बात से ग्लानि अनुभव कर रहे मनु ने बाबा से सजा देने को कहा तो बाबा ने कहा मनु! तुम्हारी सजा यही है कि अब तुम मेरी खंडित मूर्तियों का विसर्जन करने के बजाए अपने पूजाघर में रखकर उन्हीं की पूजा करो. मनु ने साईबाबा की आज्ञा सुनकर तर्क किया कि खंडित मूर्ति की पूजा न्याय सम्मत नहीं है. तो साईबाबा ने कहा मनु! शिरडी के साई रूप को मैंने जिस चोले के साथ धारण किया था उसका मक़सद जात-पात, ऊंच-नीच और भेद-भाव से ऊपर उठकर इंसान को सही मायने में इंसान बनने की शिक्षा देना था. शिरडी की द्वारका माई में रहते हुए मैंने हर पल अंधविश्वास और हरेक धार्मिक ढकोसले का पुरज़ोर विरोध किया. मैं पूजा की किसी भी पद्धति का विरोधी नहीं हूं पर ढकोसलों से मुझे सख्त नफ़रत है. बॉबी के हाथों धोखे से मूर्ति खंडित हुई थी पर तुमने बिना बात को समझे उस पर हाथ उठाया इसलिए तुम्हें समझाने के लिए मैंने दूसरी मूर्ति को उसी जगह से टूट जाने का निर्देश दिया. ये दोनों ही मूर्तियां खंडित नहीं है बल्कि मुझे प्रिय हैं क्योंकि जिन घटनाओं से मेरे भक्तों को सच्चाई की राह दिखाई देती है उन घटनाओं से मैं प्रेम करता हूं. जो मूर्तियां कुछ दिनों के संकल्प के साथ लाई गई हों अथवा काफ़ी पुरानी अथवा खंडित हो गई हों, शास्त्र उन्हें ही विसर्जित करने की आज्ञा देता है, पर तुम्हें मेरी इन दोनों मूर्तियों के विसर्जन की आज्ञा नहीं है. जहां तक अपशकुन और घर की सुख-शांति का सवाल है तो इतना समझ लो मनु कि तुम्हारे साईबाबा में मन लगाने वाले भक्त कभी किसी भी हालत में परेशान नहीं हो सकते. तुम्हें वो सब-कुछ मिलेगा जिसके तुम अधिकारी हो. स्वप्न में साईबाबा का निर्देश पाकर मनु की आशंका नष्ट हो गई और आज भी उनके पूजाघर में साईबाबा की वे दोनों खंडित मूर्तियां स्थापित हैं. मनु गिडवानी प्रतिदिन श्रद्धा से उन मूर्तियों की पूजा हैं.

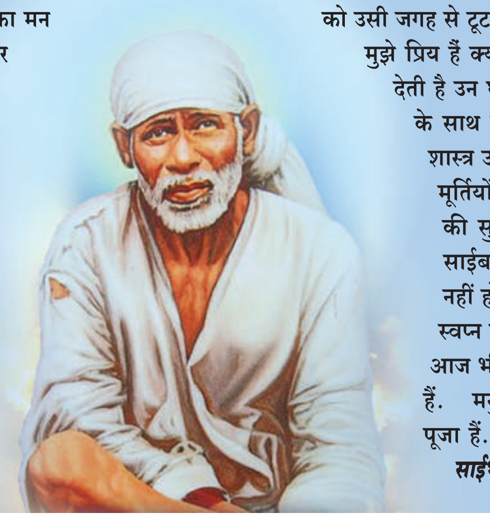

साईभक्तों की सच्ची कहानियों से साभार

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

हमारी भक्ति

साईबाबा के जीवन और सच्चरित्र और आपकी अपनी भक्ति से संबंधित किसी एक विषय पर यहां परिचर्चा की जाएगी और श्रेष्ठ विचार भेजने वाले साईभक्त के विचार यहां प्रकाशित किए जाएंगे.

आज का विषय : साईभक्ति प्रचार-प्रसार में फ़िल्मों का कितना योगदान है?

आपके जवाब :

1. साईभक्ति के प्रचार-प्रसार में फिल्मों का उतना ही योगदान है जितना दाल में नमक का होता है. भक्त उस चरित्र को देखना और पढ़ना अवश्य चाहते हैं जिनके प्रति उन्हें श्रद्धा होती है परंतु बाबा की भक्ति का वास्तविक प्रचार तो उनकी कृपा से ही होता है. उनके दरबार में की गई फरियाद कभी ख़ाली नहीं जाती है यही उनके प्रचार का मुख्य कारण है न कि फिल्में. -***सुनील गुप्ता,*** फतेहपुर-उत्तर प्रदेश (सर्वश्रेष्ठ विचार)
2. बिल्कुल साईबाबा को शिरडी और महाराष्ट्र की सीमाओं से निकालकर जन-जन तक पहुंचाने में फ़िल्मों और टेलिविज़न सीरियलों का बहुत बड़ा योगदान है. -***समीर सिंह,*** इलाहाबाद-उत्तर प्रदेश
3. हमने पहली बार स्टार टी.वी. पर साईबाबा की फ़िल्म देखकर ही दयालु साईबाबा के विषय में जाना, फिर हम सपरिवार शिरडी गए और साईकृपा से हमारी ज़िंदगी बदल गई. निश्चित ही फ़िल्मों का साईभक्ति प्रचार में बहुत बड़ा योगदान है. -***पल्लवी ठाकुर,*** पटना-बिहार

अगले सप्ताह का विषय :

क्या शिरडी के साईबाबा चमत्कारी थे?

आप अपने विचार sai4world@gmail.com पर मेल करें अथवा शिरडी साईबाबा फाउन्डेशन, पोस्ट बॉक्स नम्बर-17517, मोतीलाल नगर नम्बर-1, गोरेगाँव (पश्चिम), मुम्बई-58 पर डाक द्वारा भेजें या 09999989427 पर एसएमएस करें.

सभी साई भक्तों को विनम्रता से सूचित किया जाता है कि वे अपने साई अनुभव, साई उत्सवों आदि की विस्तृत सूचना (कार्यक्रम, प्रबंधक, तिथि, स्थान और समय सहित) विकास कपूर को sai4world@gmail.com पर मेल कर सकते हैं.

परंपरा तो यह थी कि इन विरक्त साधु-संन्यासियों की शाही सवारियों को स्वयं राजा-महाराजा और सम्राट कंधा दिया करते थे और उस एक दिन के लिए अपने तमाम राजसी अलंकार संन्यासियों को समर्पित कर दिया करते थे.

यह आत्ममंथन का वक़्त है

अनंत विजय

साहित्य अकादमी के पुरस्कार वितरण समारोह में कुछ हिंदू संगठनों के विरोध से साहित्यिक जगत में तूफ़ान उठ खड़ा हुआ है. प्रगतिवाद और जनवाद के तथाकथित ठेकेदार इसे लेखकीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भगवा हमला करार दे रहे हैं. इन बयानवीर जनवादियों को समारोह के दौरान हुए विरोध प्रदर्शन में फासीवाद की आहट भी सुनाई दे रही है, लेकिन किसी भी विरोध पर हल्ला मचाने वाले उक्त प्रगतिवादी लेखक यह भूल जाते हैं कि विरोध और विवाद के पीछे की वजह क्या है. दरअसल इस विवाद के पीछे पूर्व सांसद एवं लेखक वाई लक्ष्मी प्रसाद का उपन्यास द्रौपदी है, जिस पर उन्हें इस वर्ष साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है. इस उपन्यास में लक्ष्मी प्रसाद ने द्रौपदी के चरित्र और कृष्ण से उसके संबंधों को कल्पना के आधार पर एक बेहद घिनौना रूप दिया है. भारतीय जनमानस में महाभारत और उसके पात्रों को लेकर सदियों से एक स्थापित मान्यता है. हिंदू जनमानस में द्रोपदी को सम्मान और श्रद्धा की नज़र से देखा जाता है, लेकिन लक्ष्मी प्रसाद ने पौराणिक आख्यानों के आधार पर बुनी गई या स्थापित द्रौपदी की छवि को ध्वस्त करने की घृणित कोशिश की है. अभिव्यक्ति की आज़ादी के नाम पर पौराणिक आख्यानों या फिर धार्मिक चरित्रों के साथ छेड़छाड़ की इजाज़त किसी भी लेखक को नहीं है. मिथकों की जड़ें लोकमानस में बहुत गहरी और व्यापक हैं. इस वजह से रचनाकार से विवेकपूर्ण सतर्कता अपेक्षित है. हर मिथक और प्रतीक की एक संभावना होती है, उस संभावना की दिशा में ही लेखक को उसका इस्तेमाल करना चाहिए और एक सीमा के बाद उसे विरूपित नहीं किया जाना चाहिए. जिस लेखक को मिथक की विराटता में अपनी क्षुद्रता भरनी हो, उसे मिथक का इस्तेमाल सृजनात्मक लेखन में नहीं करना चाहिए.

सृजनात्मक लेखन में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहां धार्मिक प्रतीकों, पौराणिक मिथकों या फिर धार्मिक चरित्रों का इस्तेमाल किया गया है. ईसा, राम, कृष्ण, द्रौपदी, सीता, अहिल्या एवं कर्ण आदि अनेक पात्रों का उपयोग हिंदी के कई लेखकों ने किया है. आधुनिक हिंदी काव्य की दो बड़ी रचनाएं कामायनी और राम की शक्ति पूजा पौराणिक-धार्मिक मिथकों को आधार बनाकर मानवीय और राष्ट्रीय संदर्भों में उनकी युगीन व्याख्या करती हैं. शिवाजी सावंत ने अपने उपन्यास मृत्युंजय में कर्ण को समूची पीड़ित, दलित और शोषित जनता का प्रतीक बना दिया है. रांगेय राघव के अलावा भी कई प्रगतिशील लेखकों ने अपने लेखन में पौराणिक और धार्मिक प्रतीकों का उपयोग किया है, लेकिन इन सभी लेखकों ने प्रचलित और स्थापित मान्यताओं के ख़िलाफ़ जाकर किसी का भी चरित्र हनन नहीं किया है. तर्कसंगत तरीक़े से उनके व्यक्तित्व की कमियों को उजागर अवश्य किया है. हर युग में कवियों ने भी पौराणिक मिथकों को नए ढंग से रचा है. तुलसीदास जो रामकथा में पाते हैं, वह नरेश मेहता नहीं पाते. सूरदास के यहां जो कृष्ण कथा है, वह धर्मवीर भारती के यहां नहीं है. अमेरिका में हॉवर्ड फास्ट ने भी पौराणिक और ऐतिहासिक प्रतीकों का उपयोग किया है, लेकिन उनके संदर्भ बेहद आधुनिक हैं.

लेकिन लक्ष्मी प्रसाद की इस कृति के समर्थन में खड़े होकर एक बार फिर से इन प्रगतिवादी और जनवादियों का दोहरा चरित्र उजागर हुआ है. अभिव्यक्ति की आज़ादी के नाम पर कुछ लेखकों ने हिंदू धर्म, उसकी मान्यताओं और उसके देवी-देवताओं पर किसी भी तरह की टिप्पणी की स्वतंत्रता ले रखी है. राजेंद्र यादव कभी हनुमान को आतंकवादी कह देते हैं, एफ एम हुसैन भारत माता की नंगी तस्वीर बना देते हैं. जब इनका विरोध होता है तो उस पर छाती पीटते हैं और देश पर संकटकाल की डुगडुगी बजाते हैं. क्या इन लेखकों में हिम्मत है कि वे इस्लाम या मोहम्मद साहब के बारे में कुछ लिख सकें. क्या एम एफ हुसैन में यह हिम्मत है कि जिस तरह की पेंटिंग वह हिंदू देवी-देवताओं की बनाते हैं, उसी स्वतंत्रता के साथ वह इस्लाम धर्म से जुड़े पात्रों या चरित्रों का चित्रण कर सकें. सलमान रश्दी और तस्लीमा नसरीन ने इस्लाम के ख़िलाफ़ लिखने की हिम्मत दिखाई तो आज उनकी स्थिति किसी से छुपी नहीं है. सलमान भारी सुरक्षा के बीच ज़िंदगी बिता रहे हैं और तस्लीमा दर-बदर की ठोकरें खा रही हैं. अभी बहुत ज़्यादा दिन नहीं बीते हैं, जबकि एक डेनिश कार्टूनिस्ट ने पैगंबर साहब का कार्टून बना दिया था. नतीजा यह हुआ कि अलक़ायदा तक के लोग उसकी जान के पीछे पड़ गए थे. भारत में भी एक पत्रिका के संपादक और उसके मालिक को यह कार्टून छापने पर जेल की हवा खानी पड़ी थी. तब तो किसी भी प्रगतिशील लेखक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की याद नहीं आई थी. मेरा सवाल सिर्फ़ इतना सा है कि ये जो जनवाद और प्रगतिवाद का झंडा बुलंद करने वाले लेखक और प्रोफेसर हैं, वे बार-बार हिंदुओं की सहिष्णुता की परीक्षा क्यों लेना चाहते हैं. इन जैसे दोहरे चरित्र के लोगों की वजह से ही हिंदुओं का मन खट्टा होता है, उनमें कट्टरता बढ़ती है और समाज में वैमनस्यता फैलती है. कोई भी चीज़ अगर ग़लत है तो इसका आधार तो समान रूप से हर समुदाय और धर्म के लोगों पर लागू होता है अथवा फिर हिंदुओं के लिए अभिव्यक्ति की आज़ादी का आधार कुछ और होता है और अन्य समुदाय के लोगों के लिए कुछ और.

किसी भी कृति में मिथक या धार्मिक प्रतीकों का इस्तेमाल वहां तक ही ठीक होता है, जहां तक वे मनुष्य के अंतर्जगत को व्याख्यायित कर सकें या फिर मनुष्यों के आपसी संबंधों को एक नई दिशा दे सकें. अभिव्यक्ति की आज़ादी के नाम पर अभिव्यक्ति की अराजकता की इजाज़त किसी को भी नहीं दी जा सकती है. साहित्य अकादमी एक स्वायत्त संस्था है और प्रगतिशील लेखकों ने ही इस पर दक्षिणपंथी होने का आरोप जड़ा था. लेकिन, अब वही जनवादी एवं प्रगतिवादी लेखक और संगठन साहित्य अकादमी के पक्ष में खड़े दिखाई दे रहे हैं. यह तो जनवाद की मौक़ापरस्ती का एक ताज़ा नमूना है, इतिहास में इसके सैकड़ों उदाहरण हैं. अब वक़्त आ गया है कि ऐसे लोगों और संगठनों को अपने गिरेबां में झांक कर आत्ममंथन करना चाहिए. अगर वे समय रहते नहीं चेते तो अभी सिर्फ़ अप्रासंगिक हुए हैं, आने वाले दिनों में वे इतिहास के पन्नों में भी जगह नहीं पा सकेंगे.

(लेखक आईबीएन7 से जुड़े हैं)

feedback@chauthiduniya.com

पुस्तक अंश मुन्नी मोबाइल

गतांक से आगे

प्रदीप सौरभ

शिविरों में नवजात बच्चों की मां से मिलने आनंद भारती निकलते हैं तो उनकी भी आंखें नम हो जाती हैं. नूरजहां बेगम से जब वह मुख़ातिब होते हैं तो उसके चेहरे पर बच्ची जनने की मुस्कान अनुपस्थित है. बावजूद इसके उसने अपनी बेटी का नाम मुस्कान रखा है. कहती है कि अंधेरा हमेशा नहीं रहता है. अफसाना बानू का आशियाना उजड़ चुका है. आशियाने की उसके अंदर ललक है. उसने भी शायद इसीलिए अपनी नवजात बेटी का नाम आशियाना रखा है. अफसाना के लिए आशियाना बेशक उसके लिए अफ़साना ही साबित हो, लेकिन जीवन की चाहत का ही नतीजा है कि उसने अपनी बेटी का नाम आशियाना रखा. ज़िंदगी है कि मरती नहीं है, चाहे कितने उसे मिटाने वाले आ जाएं. कविताएं समय के साथ जीती-मरती हों, लेकिन आदमी की कविता कभी नहीं मरती है. आदमी-जो था, जो है और जो रहेगा.

संघ परिवार ने गुजरात को हिंदुत्व की प्रयोगशाला बनाया था. हिंदुस्तान को हिंदू राष्ट्र कैसे बनाया जाए, वह इसका प्रयोग गुजरात में कर रहा था. इस प्रयोगशाला के प्रमुख वैज्ञानिकों में मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी और विश्व हिंदू परिषद के अंतरराष्ट्रीय महासचिव प्रवीण तोगड़िया थे. तात्कालिक रणनीति के तहत गोधरा से गांधी नगर पहुंचने की पुख्ता योजना बनाई जा रही थी. दिल्ली फ़िलहाल दूर थी.

गुजरात में संघ परिवार लंबे समय से अपने गणित को लेकर जूझ रहा था. 1980 में हुए आरक्षण विरोधी आंदोलन में भाजपा भी कूदी थी. दलितों पर अत्याचार हुआ. हिंदुओं ने हिंदुओं को मारा. दलित बस्तियों में एक साथ रहने वाले हिंदू-मुस्लिमों ने नारा दिया, दलित मुसलमान भाई-भाई. इस नारे का असर यह हुआ कि जब सवर्ण हिंदू दलित हिंदुओं पर हमला बोलते तो मुसलमान उनकी रक्षा में उतरते. वहीं दूसरी ओर कांग्रेस के माधव सोलंकी क्षत्रिय, हरिजन, आदिवासी और मुसलमानों का गठजोड़ बनाकर सत्ता में पहुंच चुके थे. संघ परिवार को लगा कि गुजरात में सवर्ण हिंदू के बल पर वह कभी सत्ता तक नहीं पहुंच पाएंगे. 1985 के आसपास संघ परिवार ने हिंदुत्व की छतरी खोली. कहा कि दलित-हरिजन सब हिंदू हैं. संघ परिवार दलित हिंदुओं के बीच काम करने लगा. इसीलिए इस दौरान दोबारा शुरू हुआ आरक्षण विरोधी आंदोलन दलित विरोधी होने के बजाय हिंदू-मुस्लिम हो गया. जिन दलितों पर संघ परिवार हमला कर रहा था, वे अब उसके सिपाही हो गए थे. इस आंदोलन में काफ़ी जानें गईं. राजीव गांधी ने माधव सोलंकी की सरकार को बर्ख़ास्त कर आदिवासी नेता अमर सिंह चौधरी को मुख्यमंत्री बना दिया. दलित पूरी तरह से संघ परिवार से जुड़ गए थे. विश्व हिंदू परिषद के असली त्रिशूलधारी दलित बन चुके थे.

इसी दलित सेना ने 1992 और 2002 में अपना जौहर दिखाया. दंगे के लिए पांच सौ रुपये और एक बोतल देसी शराब इनके लिए काफ़ी थी. गोधरा अग्निकांड ने हिंदू ब्रिगेड का दोबारा गुजरात की राजधानी गांधी नगर पहुंचने का रास्ता साफ कर ही दिया था. पूरा गुजरात दो हिस्सों में बंट चुका था. कुछ माह पहले तक भारतीय जनता पार्टी के लिए बंजर रहा गुजरात, चुनाव की हरी फ़सल काटने के लिए अब पूरी तरह तैयार था. मोदी इस बंटवारे का राजनीतिक लाभ हर हाल में उठाना चाहते थे. वह समय से पहले विधानसभा भंग कर चुनाव कराना चाहते थे, लेकिन राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और विपक्षी दलों के दबाव में वह ऐसा नहीं कर पा रहे थे. प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद मोदी ने अंततः 2002 के जुलाई माह में विधानसभा भंग कर दी. वैसे विधानसभा का छह माह का कार्यकाल अभी बाक़ी था. चुनाव में हिंदू विमुख न हो जाएं, इसके लिए विश्व हिंदू परिषद ने राज्य में हिंदू जागरण का ऐलान कर दिया. परिषद ने चुनाव को धर्मयुद्ध की तरह लिया. परिषद ने रणनीति बनाई कि चुनावों में एक भी मुस्लिम को विधानसभा की चौखट तक न पहुंचने दिया जाए. **अगले अंक में जारी...**

feedback@chauthiduniya.com

कुंभ स्नानों की कुछ यादें कचोटती हैं

डॉ.कमलकांत बुधकर

यूं तो कुंभ शताब्दियों से भारत के चार नगरों, जो चार दिशाओं में विभिन्न नदियों के किनारे बसे हैं, में धार्मिक स्नान पर्व के रूप में मनाया जा रहा है. लेकिन इसका बहुत पुराने, ऐतिहासिक और प्रमाणिक दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं हैं. हां, मुगलकाल के ग्रंथों में हरिद्वार कुंभ का वर्णन अलबत्ता मिलता है. उनका संदर्भ इस स्तंभ में पहले आ चुका है. कुछ लोग इन पर्वों की शुरुआत सम्राट हर्षवर्द्धन के काल यानी 612-647 ईस्वी में मानते हैं. सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वर्णन में लिखा है कि पांच साल तक संग्रह की हुई अपनी सारी संपत्ति राजा शीलादित्य हर्षवर्द्धन अपने पूर्वजों की तरह प्रयाग की पुण्यभूमि में सबसे पहले भगवान बुद्ध की प्रतिमा के सामने समर्पित करता था. फिर उसे स्थानीय पंडों-पुजारियों, फिर बाहर के पंडों-पुजारियों, फिर प्रमुख विद्वानों, फिर विधर्मियों और अंत में विधवाओं, असहायों, भिखारियों, अपंगों, ग़रीबों और साधुओं को बांट देता था. इस तरह राजा अपना सारा कोष और भोजन भंडार बांटने के बाद अपना क़ीमती राजमुकुट, जड़ाऊ कंठहार और यहां तक कि पहने हुए कपड़े तक दान कर देता था. अंत में सब कुछ दे चुकने के बाद राजा प्रसन्नतापूर्वक कहता था कि मैंने अपना सब कुछ ऐसे कोष में दे दिया है, जो कभी ख़ाली नहीं होगा.

इस सारे वर्णन में इतनी बात तो पता चलती है कि राजा शीलादित्य हर्षवर्द्धन अपने पूर्वजों की तरह ही पांच साल के बाद हर छठे वर्ष प्रयाग में यह महादान महोत्सव त्रिवेणी के किनारे आयोजित करता था. पर यह कहीं सिद्ध नहीं होता कि इस आयोजन को कुंभ कहते थे या कि इसे हर्षवर्धन ने आरंभ किया था. लगता यह है कि बौद्धकाल में कुंभ पर्व का प्रचलित रूप बदल कर महादान पर्व के रूप में आ गया होगा, जिसे बाद में आदि शंकराचार्य के आविर्भाव के बाद संन्यासियों की दशनाम परंपरा द्वारा पुनः व्यवस्थित किया गया होगा. आज भी संन्यासियों एवं अन्य साधु संप्रदायों के बीच अपने संप्रदायों-संगठनों के चुनावों और अन्य प्रमुख निर्णयों के लिए विभिन्न कुंभों की प्रतीक्षा की जाती है. और, जब कुंभ पर संपूर्ण देश का साधु समाज अपने-अपने अखाड़ों और विभिन्न संप्रदायों के साथ एक जगह जुटता है तो आगे के बारह वर्षों के लिए धर्म, समाज व संस्कृति विषयक निर्णय लिए जाते हैं. आज भले ही यह परंपरा प्रतीकात्मक अधिक होती जा रही हो, पर किसी समय में निश्चय ही साधु-संन्यासियों का इस तरह एकत्र होना, देश-विदेश से आए हुए गृहस्थ समाज के साथ मिल बैठना, धर्मशास्त्रों से संबद्ध विविध विषयों की समालोचना, दार्शनिक प्रश्नों पर विचार-विमर्श करना और अन्न-धन दान, यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान संपन्न करना सारे समाज के लिए अत्यंत प्रभावोत्पादक रहता होगा.

चर्चा कुंभनगर की

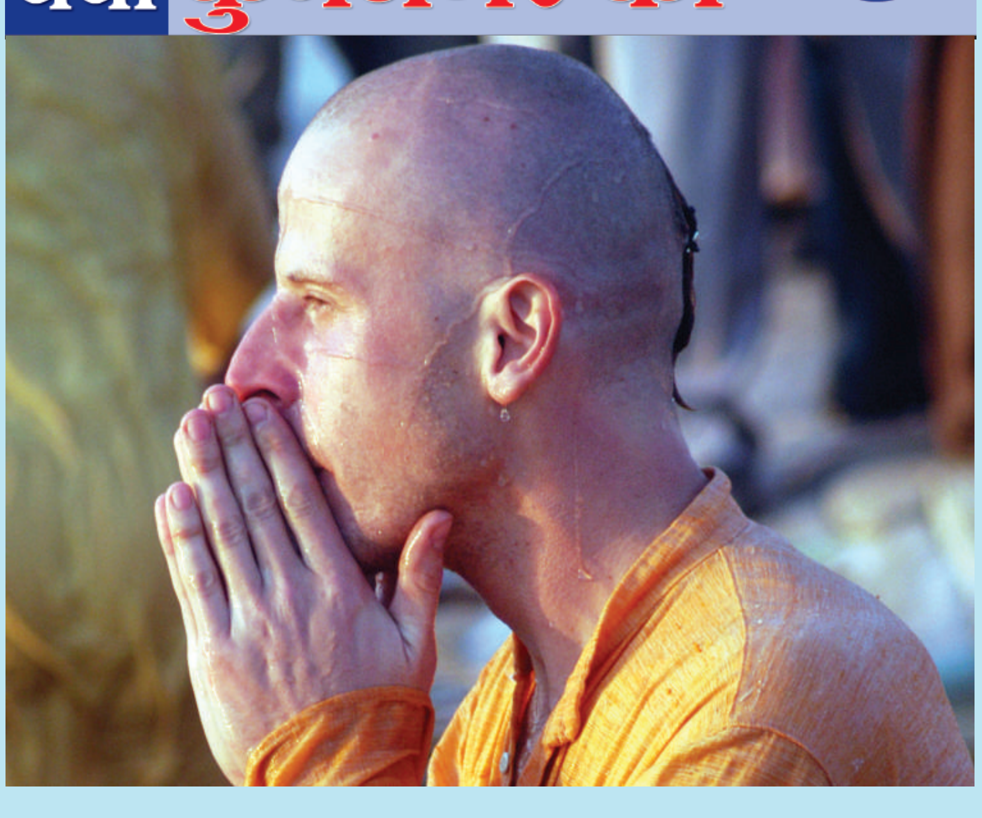

परंपरा तो यह थी कि इन विरक्त साधु-संन्यासियों की शाही सवारियों को स्वयं राजा-महाराजा और सम्राट कंधा दिया करते थे और उस एक दिन के लिए अपने तमाम राजसी अलंकार संन्यासियों को समर्पित कर दिया करते थे. धूनी रमाने वालों को राजसी वैभव इस रूप में समर्पित किया जाना और राजकीय सम्मान दिया जाना वस्तुतः विराग के चरणों में अनुराग का समर्पण ही था, जो भारतीय अध्यात्म परंपरा का सार्थक लक्षण है. कुंभ का इतिहास धार्मिक और आध्यात्मिक ही नहीं, रक्तरंजित भी रहा है. प्राप्त जानकारी के अनुसार, 1938 में तैमूरलंग मथुरा, मेरठ और बिजनौर होता हुआ हरिद्वार मायापुर में रुका था. वह कुंभ का वर्ष था, अतः तैमूर को हरिद्वार में भारी मेला लगा मिला, जिसे उसके आततायी सिपाहियों ने जी भरकर लूटा. 1760 में हरिद्वार में संन्यासियों और बैरागियों का भयंकर युद्ध हो गया था, जिसमें बहुत बड़ी संख्या में साधु मारे गए थे. उक्त युद्ध को वहां उपस्थित आचार्य ग़रीबदास जी ने भी देखा था. उन्होंने इस जघन्य कांड से व्यथित होकर वहदे का ग्रंथ प्रकरण में कुछ कटु शब्द भी लिख दिए हैं. कुछ पंक्तियों में उन्होंने लिखा था, संन्यासी बैरागी भड़वे, चूतड़ छार लगावे हैं. तोप तुपुक तरवार कटारी धूं धूं धार मचावे हैं. हर पैड़ी, हर हेत न जाण्या, वां जा तेग चलावे हैं! उक्त संघर्ष के बाद हरिद्वार में आए हुए तीर्थ यात्रियों में ऐसी भगदड़ मची कि वे लंबे पहाड़ी रास्तों से होकर अपने ठिकानों पर तेज़ी से लौट गए.

10 अप्रैल 1796 को हरिद्वार में सिख घुड़सवार फौज और संन्यासियों के बीच घोर युद्ध हुआ था. इस युद्ध में अनेक संन्यासी महंत मानपुरी सहित मारे गए थे. घायल लोगों की संख्या भी बहुत बड़ी थी. सिखों में क़रीब 20 लोग मारे गए थे. यह सारी घटना कैप्टन टॉमस हार्डविक नामक एक अंग्रेज ने अपने साथी डॉ. हंटर के साथ हरिद्वार में देखकर कलमबंद की थी. दस अप्रैल, 1796 को बारह-चौदह हज़ार सिख घुड़सवार पटियाला के राजा साहेबसिंह, बूड़िया के रामसिंह एवं शेरसिंह के नेतृत्व में हरिद्वार में घुसे और उन्होंने विभिन्न घाटों पर पहुंचने का क्रम शुरू किया. साधु पैदल थे और एकाध कोई बंदूक़ रखता था, जबकि सिखों के पास भालों और बंदूक़ों की बहुतायत थी. परिणाम जो होना था, वही हुआ. सिखों ने साधुओं को मारकर भगा दिया. 1783 में भारी भीड़ और पर्याप्त सफाई व्यवस्था के अभाव के कारण जो हैजा फैला था, उसमें आठ दिन के अंदर 2,000 लोगों के मर जाने का उल्लेख मिलता है. 1819 में हरकी पौड़ी के संकरेपन ने तब क़रीब 430 लोगों की जानें ले ली थीं. 1892 में जो हैजा फैला, उसमें तो लोगों को स्नान से पूर्व ही बाकायदा रेलों में वापस भेज दिया गया था. फिर 1893 में प्लेग फैल गया और अनेक लोग उसके शिकार हो गए. इसी तरह 1897 में जब दोबारा प्लेग फैला तो उसकी भयंकरता को दबा दिया गया, पर परिणाम यह निकला कि अगले कुंभ-अर्द्धकुंभों में यात्रियों की संख्या कम हो गई. 1927 के कुंभ में हरकी पौड़ी तांगा स्टैंड के पास यातायात नियंत्रण के लिए जो लकड़ी का बैरियर, जिसे स्थानीय भाषा में अड़सल्ला कहते हैं, लगाया गया था. वह टूट गया और भीड़ में दबकर अनेक लोगों की जानें चली गईं. वह कुंभ भी दागी हो गया.

अब 1938 की बात करें. उस बरस गंगा पार फूस की बनी दुकानों के बाज़ार में आग लग जाने से भारी भगदड़ मच गई थी और बहुत सारे लोग मारे गए थे. इस अग्निकांड के बाद ही हरिद्वार में हैजा फैल गया था, जो बाद में सारे देश में फैल गया. 1950 का कुंभ देश की स्वतंत्रता के बाद हरिद्वार का पहला कुंभ था. आईसीएस अधिकारी सी एम निगम उस कुंभ में मेलाधिकारी बनाए गए थे. सुव्यवस्था और सौभाग्य से वह जनहानि विहीन कुंभ था. उसके बाद 1962 के कुंभ मेलाधिकारी टी जी के चारलू ने पहली बार शाही स्नान की व्यवस्था में परिवर्तन किया और अखाड़ों की शाहियां हरिद्वार शहर के भीतर से हरकी पौड़ी तक आने-जाने के स्थान पर गंगा पार से उन्हें लाने-ले जाने की व्यवस्था सेना के चार अस्थायी पुल हरकी पौड़ी से शोल के बीच बनवाकर की. उससे कुंभ की यातायात व्यवस्था में भारी परिवर्तन आया, जो सभी के लिए सुविधाजनक था. 1974 का महाकुंभ भी दुर्घटनाओं की दृष्टि से निरापद कुंभ था.

पर 1986 के महाकुंभ में एक भगदड़ मची और वह महाकुंभ दागी हो गया. 14 अप्रैल 1986 यानी ऐन कुंभ स्नान के दिन पंतद्वीप स्थित कांगड़ा पुल के पास 49 लोग कुचल कर काल के गाल में समा गए. इस दुर्घटना ने विकास कार्यों की दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण महाकुंभ को ग्रहण लगा दिया. 1992 में अर्द्धकुंभ तो सही सलामत निबट गया, पर मेला निबटने के बाद हुई आतंकवादी घटना में क़रीब दर्ज़न भर बस यात्रियों को गोलियों का शिकार होना पड़ा था. 1998 का महाकुंभ भी सुरक्षित नहीं रहा. इसमें एक बार फिर संन्यासी अखाड़ों निरंजनी और जूना के साधुओं के बीच ख़ूनी संघर्ष हुआ. सौभाग्य से कोई मरा तो नहीं, पर घायल कई हुए. इन घायलों में 2010 के कुंभ मेला डीआईजी आलोक शर्मा भी शामिल थे. अब यह 2010 का महाकुंभ निरापद बीत जाए, इसके लिए सभी अपने-अपने स्तर से प्रयत्नशील हैं और प्रार्थनारत भी!

kk@budhkar.in

कलाई की ख़ूबसूरती बढ़ाती घड़ियां

घड़ी अब सिर्फ़ वक़्त देखने का ज़रिया नहीं रह गई है, बल्कि वह आभूषण का हिस्सा हो गई है. जैसे हर अंग के लिए एक ख़ास आभूषण का क्रेज महिलाओं में दिनोदिन बढ़ता जा रहा है, वैसे ही कलाई पर सजने वाली घड़ियों के संसार में भी स्टाइल और फैशन ट्रेंड को देखते हुए विस्तार हो रहा है. घड़ियों के लोकप्रिय ब्रांड टाइटन ने महिलाओं को लुभाने के लिए परपल नाम से नई रेंज जारी की है, जिसमें 50 से अधिक वैरायटियां हैं. ये स्टाइलिश और ख़ूबसूरत घड़ियां इंटरनेशनल फैशन ट्रेंड को ध्यान में रखकर बनाई गई हैं. इन्हें पारंपरिक परिधान के साथ मैच किया जा सकता है और ये वेस्टर्न कपड़ों पर भी जंचती हैं. कंपनी के वाइस प्रेसीडेंट अजय चावला कहते हैं कि इस रेंज को स्वारोस्की क्रिस्टल से सजाया गया है. ये आधुनिक महिलाओं के वक़्त के साथ ही उनके स्टाइल स्टेटमेंट का भी ख़ास ख्याल रखेंगी. ये घड़ियां काले और सफेद रंग के डायल में स्टील, गोल्ड, रोज गोल्ड और स्टील एवं लेदर के संयोजन से बनाए गए स्ट्रैप में उपलब्ध हैं. जहां लेदर स्ट्रैप्स यंगस्टर्स के लिए ख़ास स्टालिश आइटम हैं, वहीं चेन स्ट्रैप उम्रदराज़ लोगों को ज़्यादा भाते हैं. हालांकि किसी भी पार्टी वियर के साथ चेन स्ट्रैप वाली घड़ियां फैशनेबल लगती हैं. रेज गोल्ड, स्टील और लेदर के संयोजन से बनी स्ट्रैप वाली घड़ी खासकर युवाओं और उम्रदराज़ों के बीच का फ़र्क़ मिटाने के लिए बनाया गया है. इन घड़ियों को किसी भी अवसर या मौसम में पहन कर गॉर्जियस लुक दिया जा सकता है. मसलन शादी-विवाह, पार्टी, किटी या टी पार्टी आदि. यह रेंज हर उत्सव पर आपको ख़ास बनाती है. इन ख़ूबसूरत घड़ियों को किसी फ्रेंड को भी गिफ्ट करते हैं तो ख़ुद के लिए भी ले सकते हैं. इनकी क़ीमत 2500 रुपये की कम क़ीमत से लेकर 7000 रुपये तक है.

ताज़गी का नया स्वाद विदेशी चाय के साथ

चाय की लोकप्रियता इसी बात से पता चलती है कि यह विश्व में सबसे ज़्यादा पसंद किया और पिया जाने वाला पेय है. हमारे देश में भी लगभग सभी परिवारों की सुबह चाय की चुस्कियों से शुरू होती है और शाम को परिवार वालों के साथ एक चाय का राउंड ज़रूर होता है. केवल घर परिवार ही नहीं, अतिथि देवो भव: जैसी मान्यता के समर्थक भारतीय परिवारों में घर आने वाले मेहमान को मौसम की परवाह किए बिना चाय के लिए ज़रूर पूछा जाता है. भारत की इस परंपरा को ध्यान में रखकर विश्व में मशहूर ब्रिटिश टी कंपनी ने यहां अपने पैर पसारने का मन बनाया है. इस रणनिति के तहत कंपनी पहले अपने विदेशी चाय का स्वाद कुछ एलिट क्लास लोगों को चखाएगी और फिर आम लोगों में अपनी लोकप्रियता भुनाएगी. इसके लिए कंपनी पहले देश के कुछ पांच सितारा होटलों जैसे ओबराय, हयात और इंटरकांटिनेंटल में अपनी ब्रांडिंग करेगी, और फिर ही फिर रिटेल मार्केट में पांव पसारेगी. अपने ब्रांडेड नाम न्यूबी को भारतीय बाज़ार में लांच करने के पीछे ब्रिटिश टी कंपनी की मंशा यह है कि समाज में लुप्त होती जा रही चाय की संरक्षण पद्धति और लोकप्रियता को फिर से ताज़ा किया जाए. विदेशी ब्रांड के इस चाय में भारतीय टी लवर्स के लिए 217 स्वाद होंगे और ये स्वाद लगभग 50 वैरायटी में उपलब्ध होंगे. फ़िलहाल विदेशी स्वाद वाले चाय को देश के 15 शहरों में उपलब्ध कराया जाएगा. कंपनी का बंगाल के कोलकाता शहर में अपना पैकेजिंग स्टेशन है, जो प्रतिदिन 360 टन चाय की पैकेजिंग कर सकता है. न्यूबी के मार्केटिंग डायरेक्टर एडवर्ड बेरी कहते हैं कि भारत में चाय जैसे पसंदीदा पेय के स्वाद को लोगों के बीच स्थापित करने लिए अपना स्थान बनाना कठिन है, पर कंपनी भारतीय ग्राहकों को लुभाने की पूरी कोशिश करेगी. कंपनी की उम्मीदें भारतीय टी लवर्स से है जो हर मौक़े-बेमौक़े चाय की चुस्कियां लेने से पीछे नहीं हटते तो देश के लोगों को चाय के विदेशी स्वाद चख पाने का इंतज़ार है. तो अपने दोस्तों, सहेलियों और रिश्तेदारों को निमंत्रण देने की तैयारी कर लें, क्योंकि हर टी-पार्टी का नया स्वाद चखकर वे तारीफ़ तो आपकी ही करेंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

वैवाहिक परिधानों का नया कलेक्शन

सर्दी को अलविदा कहते हुए होली भी आकर चली गई. आम के पेड़ों पर कूकती कोयल की मीठी आवाज़ का इंतज़ार हो रहा है और बदल रहा है मौसम का मिजाज़. इसके साथ ही हमारी दिनचर्या और आदतों में भी बदलाव आने लगे हैं. यह हमारे देश की ख़ासियत है कि यहां मौसम के साथ-साथ खानपान और परिधान भी बदल जाते हैं. कुदरत के इस अनोखे अंदाज़ से ख़ुश होकर कलाकारों की कल्पना कोई न कोई रचना कर डालती है. फैशन डिज़ायनर अर्चना कोचर ने मौसम के इसी अंदाज़ को अपनी रचनाओं की प्रेरणा बनाया. उन्होंने इस मौसम में बनने वाली दुल्हनों के लिए ख़ासतौर पर सनसेट बोलवर्ड यानी सूर्यास्त का पथ और आमरस नामक दो ड्रेस कलेक्शन तैयार किए हैं, जिन्हें अभिनेत्री मुग्धा गोडसे ने लांच किया. अर्चना द्वारा बनाए गए सनसेट बोलवर्ड थीम के परिधान सूर्यास्त के जादुई क्षणों के कई रंग समेटे हुए हैं. रंगों के अलावा इसमें गोधूलि बेला के भाव भी शामिल हैं. परिधानों को देखकर उनके प्रेरणास्त्रोत का अंदाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है. सांझ बेला में उड़ते मूंगा रंग के बादलों को नारंगी रंग के आसमान की आभा देते हुए उन पर पड़ती सूर्य की कांच सी रोशनी को फैब्रिक, रंगों के इस्तेमाल, क्रिस्टल एंब्रॉड्री और मोतियों द्वारा दिखाया गया है. प्रकृति के इस अंदाज़ को अनोखे तरीक़े से अर्चना ने वेस्टर्न आउटफिट गाउन और पारंपरिक साड़ी में पेश किया है. उनके कलेशन के दूसरे भाग को आमरस नाम दिया गया. इसमें उन्होंने फलों के राजा आम के नर्म और मीठे स्वाद को अपनी प्रेरणा बनाया है. दुल्हन के जोड़े में लाल, पीले और नारंगी रंगों का मेल सदियों पुराना है. इसी रीति को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने सुनहरे धागों में चमचमाते हीरे पिरो कर ख़ूबसूरत लहंगा-चोली तैयार किया है. उन्हें सैटीन, जॉर्जेट और जरदोजी जैसे शानदार फैब्रिक में तैयार किया गया है.

युवाओं के लिए नई एक्सेसरीज

युवा वर्ग पर हमेशा से फैशन का पैशन सवार रहा है. उधर फ़िल्मों में हीरो-हीरोइन का स्टाइल बदला, इधर कमरे में बैठकर सपने देखते युवाओं का स्टाइल आइकन और स्टेटमेंट बदल गया. लेटेस्ट स्टाइल का अनुसरण करने वाले युवाओं में फैशनेबल एक्सेसरीज का क्रेज देखते ही बनता है. इनमें बेल्ट, बैग, वॉलेट, गॉगल्स, रिस्टवॉच, रिस्टबैंड आदि चीज़े आती हैं. इन एक्सेसरीज की ख़ासियत यह है कि ये वेस्टर्न ड्रेसेज के साथ भी चल जाते हैं और भारतीय परिधानों जैसे सलवार-कमीज, कुर्ता-पैजामा आदि के साथ भी ख़ूब फबते हैं. लेकिन यंगस्टर्स के इस पैशन का फंडा तब ही पूरा होता है, जब एक्सेसरीज ब्रांडेड हों. यानी किसी ख़ास बढ़िया कंपनी के हों. भारत में उक्त चीज़े बनाने वाली कंपनी फास्ट्रैक ने गॉगल्स और रिस्टवॉच के अलावा बैग्स, बेल्ट, वॉलेट, रिस्टबैंड की एक बड़ी रेंज भारतीय बाज़ार में उतार कर युवाओं को आकर्षित किया है. पहले पुणे और फिर विशाखापत्तनम, चेन्नई, बंगलुरु, भुवनेश्वर, ठाणे, नासिक, हैदराबाद और भोपाल में इन एक्सेसरीज की नई रेंज के प्रति बेहतरीन प्रतिक्रियाएं मिलने के बाद कंपनी ने इन्हें देश के दूसरे शहरों में भी उपलब्ध कराने का मन बनाया है. उक्त एक्सेसरीज 16 विभिन्न स्टोर्स पर उपलब्ध होंगी. फास्ट्रैक ब्रांड के इन यूथ लविंग आइटमों की क़ीमत भारतीय अभिभावकों को ध्यान में रखकर तय की गई है. दोस्तों को गिफ्ट करने के लिए इन्हें पॉकेट मनी से ही ख़रीदा जा सकता है. क़ीमत है सिर्फ़ 195 रुपये से लेकर 3795 रुपये तक.

अब अदा के लिए हीरा

किसी भी रिश्ते को ख़ूबसूरत बनाने में तोहफ़ों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. अगर यह रिश्ता किसी महिला से हो तो उसके लिए आभूषण से ख़ूबसूरत कोई तोहफ़ा नहीं हो सकता. ख़ासकर तब, जबकि वह आभूषण हीरों से सजा हो. ऐसा तोहफ़ा आपकी जेब पर भारी पड़ेगा, यह सोचकर आप मन मसोस कर रह जाते हैं. लेकिन, अब आभूषणों की ब्रांडेड कंपनी तनिष्क आपको ऐसा मौक़ा काफ़ी दामों में दे रही है. आप अपने प्रियजनों को चमचमाते हीरों का उपहार सिर्फ़ 999 रुपये में दे सकते हैं. देश के किसी भी कोने में मौजूद तनिष्क स्टोर में आप कंपनी के इस ऑफर का लाभ उठा सकते हैं. तनिष्क 18 कैरेट का डायमंड केवल 999 रुपये में उपलब्ध करा रही है. कंपनी के वाइस प्रेसीडेंट संदीप कुल्हाली कहते हैं कि भारतीय लोगों में डायमंड के प्रति क्रेज दिनोदिन बढ़ता जा रहा है. यह नया कलेक्शन लांच करने के पीछे कंपनी का मक़सद है ग्राहकों के लिए हीरा ख़रीदना आसान बनाना, जिससे वे अपने मनपसंद डिज़ाइन किसी को गिफ्ट कर सकें.

विज्ञापन हेतु संपर्क करें : email : advt@chauthiduniya.com

आईपीएल की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए इसका आयोजन अब सरकार के लिए एक प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका है.

दो अलहदा तस्वीरों से निकलता भविष्य का रास्ता

दो टीमें, दो टेस्ट मैच और दो परिणाम. इससे निकलती टीम इंडिया की दो तस्वीरें. इसमें एक तस्वीर है जामथा, नागपुर के विदर्भ क्रिकेट स्टेडियम की, जहां डेल स्टेन की एक गेंद ने अमित मिश्रा की गिल्लियां बिखेरी और आईसीसी रैंकिंग में शीर्ष पर क़ाबिज़ टीम को एक पारी और छह रनों की शर्मनाक़ हार का सामना करना पड़ा. मिश्रा के साथ दूसरे छोर पर खड़े ईशांत शर्मा के पैर मानों पैवेलियन पहुंचने से पहले ही जवाब देने की हालत में आ गए हों. इसकी दूसरी तस्वीर निकलती है कोलकाता के मशहूर ईडन गार्डन स्टेडियम से, जहां हरभजन की एक गेंद को समझने में मोर्ने मोर्केल की एक छोटी सी चूक हुई और अंपायर ने उंगली उठाने में कोई देरी नहीं लगाई. इसके बाद तो जैसे ईडन में भूचाल आ गया. ख़ुशी के मारे हरभजन मैदान से ही भांगड़ा करते हुए पेवेलियन की ओर दौड़े. ईशांत इस बार भी ठीक उनके पीछे थे, लेकिन इस बार जैसे उनके पैरों को पर लग गए हों.

लेकिन यहां बात इन दो तस्वीरों की नहीं हो रही. जीत और हार की इन दो अलहदा तस्वीरों के बीच कहीं न कहीं भारतीय क्रिकेट के भविष्य की तस्वीर भी छुपी है. जीत और हार तो किसी भी खेल का एक अभिन्न अंग है और जब मुक़ाबला दो शीर्ष टीमों के बीच हो तो कांटे के संघर्ष का होना भी लाज़िमी है. लेकिन ग़ौर करने वाली बात यह है कि ऐसा क्या हुआ कि घरेलू पिचों पर शेर समझी जाने वाली भारतीय टीम नागपुर में पहले टेस्ट में दक्षिण अफ्रीकी टीम से हारने को मजबूर हुई, जबकि इसी टीम ने दस दिनों के अंदर ही मेहमान टीम को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया.

अब ज़रा पहले टेस्ट के लिए भारतीय टीम के खिलाड़ियों पर ग़ौर करें. 1996 के बाद यह पहला मौक़ा था, जब राहुल द्रविड़ और वीवीएस लक्ष्मण एक साथ भारतीय टेस्ट टीम का हिस्सा नहीं थे. टीम में इनकी जगह मुरली, विजय और सुब्रमण्यम बद्रीनाथ को शामिल किया गया, लेकिन मैच की दोनों ही पारियों में टीम की बल्लेबाजी बिखर कर रह गई. सिवाय वीरेंद्र सहवाग और सचिन तेंदुलकर के, टीम का कोई भी बल्लेबाज अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाया. केवल बल्लेबाजी ही नहीं, गेंदबाजी में भी ज़हीर ने बेशक अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ी, लेकिन हरभजन सिंह की फिरकी अपना प्रभाव नहीं छोड़ सकी और अमित मिश्रा एवं ईशांत शर्मा कभी विकेटों की दौड़ में भी नज़र नहीं आए.

सीरीज के दूसरे मैच में द्रविड़ एक बार फिर बाहर थे, लेकिन चोट से उबरने के बाद लक्ष्मण की वापसी हो चुकी थी. दक्षिण अफ्रीका की पहली पारी में ज़हीर ने अपना जलवा दिखाया और एक समय बड़े स्कोर की ओर बढ़ती दिख रही टीम केवल 296 रनों पर ढेर हो गई. भारतीय पारी में सहवाग और तेंदुलकर के शतकों ने टीम को मज़बूत हालत में तो पहुंचा दिया था, लेकिन दूसरे दिन खेल ख़त्म होने से ठीक पहले दोनों ही एक के बाद एक पेवेलियन लौट गए. यहां से दक्षिण अफ्रीकी टीम मुक़ाबले पर अपनी पकड़ मज़बूत बना सकती थी, लेकिन महेंद्र सिंह धोनी के साथ मिलकर लक्ष्मण ने उसे मुक़ाबले से ही बाहर कर दिया. रही-सही कसर हरभजन ने पूरी कर दी और भारत जीत के साथ नंबर 1 का ताज बचाने में भी कामयाब रहा.

अब यदि हम इन दो तस्वीरों पर ग़ौर करें तो क्या यह नहीं लगता कि टीम इंडिया अभी भी जीत के लिए अपने सीनियर खिलाड़ियों पर निर्भर है. पहले टेस्ट में जब उक्त खिलाड़ी टीम से ग़ैरहाज़िर थे या उम्मीदों के मुताबिक़ प्रदर्शन करने में नाकामयाब रहे तो टीम को हार का सामना करना पड़ा, लेकिन दूसरे टेस्ट में सचिन, सहवाग, लक्ष्मण, धोनी और हरभजन ने उसे जीत की राह पर आगे कर दिया. इनमें सचिन, लक्ष्मण और सहवाग तो निर्विवाद रूप से टीम की ओल्ड ब्रिगेड के सदस्य हैं, जबकि हरभजन और धोनी भी कम से कम युवा तो नहीं कहे जा सकते. तो क्या हुआ हमारी यंग ब्रिगेड को? सालों से टीम में जगह पाने को बेकरार इन खिलाड़ियों को जब अपना टैलेंट दिखाने का मौक़ा मिला तो उनके पैर आग पर चलने से पहले ही जलने तो नहीं लगे. यदि ऐसा है तो फिर भारतीय क्रिकेट का भविष्य संकट में है और यह खेल के कर्ताधर्ताओं के लिए चिंता की बात है. भला कब तक हम सचिन और लक्ष्मण से मैच जिताऊ पारियों की उम्मीद करते रहेंगे. कहते हैं, संकट के अंधियारे में ही कहीं दूर क्षितिज से उम्मीद की किरण भी निकलती है. भारतीय क्रिकेट के प्रशासकों को उसी किरण की तलाश करनी होगी और शायद उसी उजाले में भविष्य का रास्ता भी तलाश करना होगा.

आईपीएल पर सुरक्षा का ख़तरा फिर मंडराया

इंडियन प्रीमियर लीग के तीसरे सत्र का आयोजन एक बार फिर ख़तरे में है. नहीं, हम ऑस्ट्रेलियाई खिलाड़ियों को लेकर बाल ठाकरे की धमकी की बात नहीं कर रहे. ऐसी धमकियां अब क्रिकेट के खेल पर ज़्यादा असर नहीं छोड़तीं, यह हम पहले भी देख चुके हैं. हम तो बात कर रहे हैं उन आतंकवादियों की, जिन्होंने भारत में होने वाले हर खेल आयोजन को अपना निशाना बनाने की धमकी दी है. बिना शक़ इसमें आईपीएल भी शामिल है और इस धमकी के बाद खिलाड़ियों, ख़ासकर विदेशी खिलाड़ियों की चिंताओं को मीडिया में प्रमुखता से जगह मिल रही है. टूर्नामेंट के पहले सीजन में चैंपियन रही राजस्थान रॉयल्स टीम के कप्तान शेन वॉर्न ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि आयोजकों को एक बार फिर टूर्नामेंट को विदेशी मैदान पर आयोजित करने के विकल्प पर विचार करना चाहिए, वरना उन्हें अपनी भागीदारी को लेकर फिर से सोचना होगा. उधर इंग्लैंड के कई खिलाड़ी भी इन धमकियों के बाद टूर्नामेंट में भागीदारी को लेकर सशंकित हैं और विभिन्न विकल्पों पर विचार करने की बात कर रहे हैं.

वॉर्न की बातों में कोई अतिशयोक्ति भी नहीं है. पिछले साल भी परिस्थितियां क़रीब- क़रीब ऐसी ही थीं, जब आईपीएल की गवर्निंग बॉडी टूर्नामेंट को दक्षिण अफ्रीका स्थानांतरित करने पर मजबूर हुई थी. पहले मुंबई कांड और फिर लाहौर में श्रीलंका क्रिकेट टीम पर हुए आतंकी हमला हुआ. इसके बाद देश में आम चुनावों को देखते हुए कई राज्य सरकारों और केंद्रीय गृह मंत्रालय ने खिलाड़ियों की सुरक्षा के मामले में अपने हाथ खड़े कर दिए. नतीजा क्रिकेट के सबसे फटाफट स्वरूप का यह ग्लैमरस अवतार भारत छोड़ दक्षिण अफ्रीका की सरजमीं पर पहुंच गया.

इस बार भी हालात कुछ ऐसे ही हैं. उधर आतंकियों की धमकी मिली और इधर पुणे में जर्मन बेकरी में विस्फोट में कई लोगों की मौत हो गई. ऊपर से नवंबर में होने वाले राष्ट्रमंडल खेलों को लेकर सरकार के हाथ पहले से ही बंधे हैं. हालांकि अब तक राज्य और केंद्र सरकारों ने टूर्नामेंट में सुरक्षा व्यवस्थाओं को लेकर किसी आनाकानी का अंदेशा नहीं दिया है, लेकिन विदेशी खिलाड़ी अपनी सुरक्षा को लेकर चिंतित ज़रूर हैं. भारतीय उपमहाद्वीप में खेल के मैदानों को जिस तरह आतंकियों ने बार-बार अपना निशाना बनाया है, उसे देखकर उनकी चिंताओं को इतनी आसानी से दरकिनार भी नहीं किया जा सकता.

आईपीएल की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए इसका आयोजन अब सरकार के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका है. सुरक्षा व्यवस्था में आनाकानी कर सरकार आतंकी संगठनों की धमकियों के सामने घुटने टेकने का संदेश नहीं दे सकती. लेकिन यदि वॉर्न की राह पर कुछ और विदेशी खिलाड़ी भी चल पड़े तो आयोजकों को एक बार फिर अपने फ़ैसले पर पुनर्विचार करने को मजबूर होना पड़ सकता है. दुर्भाग्य से यदि ऐसा हो जाता है तो इंडियन प्रीमियर लीग कहीं नॉन रेसिडेंट इंडियन प्रीमियर लीग बनकर न रह जाए.

क्या टाइगर वुड्स की दुनिया बदलेगी

ज़्यादा वक़्त नहीं गुजरा, जब टाइगर वुड्स को गोल्फ इतिहास के महानतम खिलाड़ियों में गिना-माना जाता था. 14 प्रोफेशनल मेजर गोल्फ चैंपियनशिप, 71 पीजीए टूर इवेंट्स और 16 वर्ल्ड चैंपियनशिप सहित गोल्फ कोर्स पर उनकी उपलब्धियों की लिस्ट इतनी लंबी है, जिसकी बराबरी करना शायद ही किसी और खिलाड़ी के लिए मुमकिन हो. कैरियर ग्रैंड स्लैम हासिल करने वाले सबसे कम उम्र के खिलाड़ी होने के अलावा गोल्फ की वर्ल्ड रैंकिंग में सबसे ज़्यादा समय तक शीर्ष पर बने रहने का रिकॉर्ड भी उनके नाम दर्ज़ है. केवल गोल्फ कोर्स ही नहीं, मैदान के बाहर भी उनकी लोकप्रियता का कोई सानी नहीं था. सभी बड़ी कंपनियां उन्हें अपने उत्पादों के प्रचार के लिए अनुबंधित करने हेतु बेक़रार नज़र आती थीं. पत्नी एलिन नोर्डेग्रोन और दो बच्चों सैम एवं चार्ली के साथ उनका पारिवारिक जीवन प्रोफेशनल खिलाड़ियों के लिए आदर्श माना जाता था, लेकिन एक छोटी सी दुर्घटना ने जैसे उनकी ज़िंदगी में तूफ़ान ला दिया. 25 नवंबर को एक टेबलॉयड ने यह दावा किया कि वुड्स की अपनी पत्नी के अलावा एक अन्य महिला से भी संबंध रहे हैं. इसके बाद तो मानो ऐसी ख़बरों की झड़ी लग गई और अगले एक सप्ताह में कम से कम एक दर्ज़न महिलाओं के साथ वुड्स के संबंध होने के खुलासे ने उनकी ज़िंदगी बदल कर रख दी. पत्नी एलिन ने उनके साथ रहने से मना कर दिया तो कई नामी कंपनियों ने उनके साथ अपने व्यवसायिक संबंधों को खत्म करने की घोषणा कर दी. प्रशंसकों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जब वुड्स ने इन आरोपों को स्वीकार किया, साथ ही उन्होंने गोल्फ के मैदान से अनिश्चितकाल तक दूर रहने की घोषणा कर दी.

केवल 15 दिनों के अंदर वुड्स की दुनिया पूरी तरह बदल चुकी थी. गोल्फ कोर्स से दूर, वह डॉक्टरों के पास पहुंच चुके थे. ऐसा लगने लगा कि वह अब दोबारा मैदान पर कभी नज़र नहीं आएंगे. यह तो पता नहीं कि ऐसा हो पाएगा नहीं, लेकिन उन्होंने वापसी की दिशा में पहला क़दम ज़रूर बढ़ा दिया है. क़रीब तीन महीने तक दुनिया की नज़रों से दूर रहने के बाद 19 फरवरी को एक सार्वजनिक बयान में अपने किए के लिए माफी मांगते हुए उन्होंने दोबारा मैदान पर उतरने की इच्छा जताई, लेकिन इसके लिए कोई तय समय नहीं बताया. दुनिया भर में फैले वुड्स के प्रशंसक इस घोषणा से उत्साहित ज़रूर हैं, लेकिन भविष्य के बारे में कोई भी कयास लगाना अभी शायद जल्दबाजी होगी और बहुत कुछ उनकी पत्नी एलिन के रुख़ पर निर्भर करेगा. वुड्स के बयान से लगता है कि उनकी पहली प्राथमिकता अपने पारिवारिक जीवन को दोबारा पटरी पर लाना है. अच्छी बात यह है कि उनके दोनों बच्चे उनके पास लौट चुके हैं, लेकिन एलिन अभी भी ख़फ़ा हैं. खेल के मैदान पर कई चुनौतियां जीत चुके वुड्स के लिए पत्नी को मनाना शायद सबसे बड़ी चुनौती है. लेकिन सारी दुनिया की निगाहें एक बार फिर वुड्स पर टिकी हैं. इस उम्मीद में कि एक बार फिर उनके दिन बहुरेंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

चौथी दुनिया

दिल्ली, 8 मार्च–14 मार्च 2010

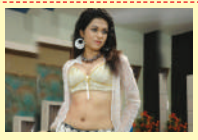

फ़िल्म लाहौर में श्रद्धा लीड रोल में हैं. इस फ़िल्म की रिलीज़ के बाद ही तय हो पाएगा कि उनमें कितना दम है.

स्नेहा का इकोफ्रेंडली नेचर

आजकल हर किसी पर ग्लोबल वार्मिंग का भूत सवार है. नेता से लेकर अभिनेता तक. कभी ट्विटर तो कभी ब्लॉग में सभी अपना पर्यावरण प्रेम दर्शाते रहते हैं. इन्हीं पर्यावरण प्रेमियों की फ़ेहरिस्त में एक और नाम शामिल हो गया है. यह नाम है लकी गर्ल स्नेहा उल्लाल का. फ़िल्म लकी के बाद उनकी फ़िल्म आर्यन और काश मेरे होते के बॉक्स ऑफिस पर ढ़ेर होने से उनका मार्केट बिल्कुल ख़त्म हो गया. इस दौरान ऐश्वर्या के लुक्स से तुलना होने से उनकी जो भी लोकप्रियता बनी थी, वह सब ख़त्म हो गई. पिछले दिनों एक फ़ार्मूला कार रेस कंपनी की इकोफ्रेंडली रिमोट कार की लांच में उन्होंने शिरकत की. इस इवेंट में आने के दो कारण थे. पहला तो यह कि इसमें उनकी फ़िल्म क्लिक का पब्लिसिटी कार्यक्रम था और दूसरा कारण था उनका इनवायरमेंटल लगाव. कार्यक्रम में वह सभी को प्रदूषण रोकने की नसीहत देती नज़र आ रही थी. इस इकोफ्रेंडली नेचर का उन्हें कुछ तो लाभ ज़रूर मिलेगा. वैसे बालीवुड से मिली असफलता के बाद स्नेहा संभल गई हैं, हालांकि वह कहती हैं कि बॉलीवुड फ़िल्म लकी से मिले नाम ने ही उन्हें दर्शकों के बीच पहचान दिलाई. पर बॉलीवुड में अपनी असफलता का कारण वह मानती हैं कि उन्होंने ऐसे लोगों पर भरोसा किया जिन्होंने उन्हें सही राह नहीं दिखलाई. जबकि दक्षिण फ़िल्म इंडस्ट्री के बारे में वह बताती हैं कि वहां लोग काफ़ी अच्छे है और सही रास्ता बताते हैं. इसलिए वह दक्षिण की फ़िल्मों में काम करना कभी नहीं छोड़ेगीं. हलांकि बॉलीवुड दर्शकों को लुभाने के लिए वह बॉलीवुड में कोई भी डी ग्रेड फ़िल्म भी करने को तैयार हैं. इससे पहले वह स्क्रिप्ट्स को लेकर काफ़ी चूजी हुआ करती थी, जिससे हिंदी फ़िल्मों के साथ उनकी फेस वैल्यू भी ख़त्म हो गई. शायद इसीलिए स्नेहा आजकल फ़िल्मों की पब्लिसिटी से लेकर सोशल इवेंट हर जगह नज़र आती हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

पहला इम्तिहान है

असिन, तमन्ना, श्रेया सरन और श्रद्धा दास में अगर कोई चीज़ कॉमन है तो वह यह है कि इन सभी अभिनेत्रियों ने साउथ सिनेमा से बॉलीवुड में एंट्री की है. श्रद्धा दास के अलावा बाक़ी सभी अभिनेत्रियों की हिंदी फ़िल्में रिलीज़ भी हो चुकी हैं और वे बड़े स्टार्स और बड़े बजट की फ़िल्मों में काम कर रही हैं, लेकिन श्रद्धा दास का इम्तिहान अभी बाक़ी है. फ़िल्म लाहौर में वह लीड रोल में हैं. लाहौर को लेकर वह काफ़ी उत्साहित हैं. हालांकि उनकी इस फ़िल्म की वो पब्लिसिटी नहीं हो पा रही है जो मीडिया में बिग स्टार और बिग बजट की फ़िल्मों को मिलती है. लेकिन इन सब बातों से श्रद्धा को कुछ ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता. उनका मानना है कि फ़िल्मों की सफलता में प्रचार का योगदान सिर्फ़ रिलीज़ होने तक ही होता है. उसके बाद सिर्फ़ वहीं फ़िल्में बॉक्स ऑफिस और दर्शकों के जेहन में टिक पाती हैं जो स्टोरी और कंटेंट के लिहाज़ से बेहतर होती हैं. अपनी बात की प्रमाणिकता के लिए वह कई बड़ी फ़िल्मों का ज़िक्र करती हैं जिनमें बड़े स्टार्स तो थे लेकिन कमज़ोर कहानी की वजह से फ्लॉप हो गईं. इसके अलावा वह अपनी फ़िल्म लाहौर को कई मायने में स्पेशल मानती हैं. मसलन भारत-पाक संबधों पर खेल पर आधारित यह पहली फ़िल्म होगी. अवतार के सिंगर का इस फ़िल्म में आवाज़ देना. ख़ैर इस फ़िल्म के रिस्पांस के बाद ही तय हो पाएगा कि उनमें कितना दम है. उनके मुताबिक़, उन्होंने लाहौर इसलिए नहीं साइन की थी कि उन्हें सिर्फ़ बॉलीवुड में काम करना है, बल्कि इसलिए कि उन्हें फ़िल्म का विषय बहुत लुभावना लगा था. वह कहती हैं कि अगर यह फ़िल्म पंजाबी भाषा में बन रही होती और मुझे ऑफर मिलता तो भी मैं इसे साइन करती. हालांकि उनकी दिली इच्छा थी कि वह हिंदी फ़िल्मों में काम करें, लेकिन वह सही स्क्रिप्ट का इंतज़ार कर रही थीं और लाहौर को अपना लकी डेब्यू मानती हैं. चलिए, अभी तो आप कुछ भी कहिए. लोग तो लाहौर रिलीज होने के बाद ही बोलेंगे!

इस बार पूरी तैयारी है : सदा

अपनी पहली फ़िल्म जयम से सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का अवार्ड हासिल करने वाली सदाफ मोहम्मद सैयद उर्फ सदा फ़िल्म क्लिक से बॉलीवुड में आगाज़ कर चुकी हैं. फ़िल्म को अपेक्षित सफलता नहीं मिली, लेकिन उनके हौसले बुलंद हैं. मराठी मुस्लिम परिवार में जन्मी सदा ने पिछले दिनों चौथी दुनिया से एक लंबी बातचीत की. पेश हैं प्रमुख अंश:

आपने ज़्यादातर तमिल, तेलुगु और कन्नड़ फ़िल्मों में काम किया है. अब हिंदी फ़िल्मों में आपकी रुचि दिख रही है?

सबसे पहले तो मैं यह बता दूं कि मेरा जन्म महाराष्ट्र के रत्नागिरी में हुआ है, इसलिए मैं प्योर मराठी और हिंदीभाषी हूं. जो लोग सोचते हैं कि मैं साउथ से हूं तो ऐसा बिल्कुल नहीं है.

तो फिर बॉलीवुड से शुरुआत क्यों नहीं की?

दरअसल, बहुत कम लोगों को पता है कि मैंने अपना करियर हिंदी फ़िल्मों से शुरू किया था. मेरी पहली हिंदी फ़िल्म लव खिचड़ी थी, लेकिन बॉलीवुड में वहीं सितारा लाइम लाइट में आता है, जिसकी फ़िल्म बॉक्स ऑफिस पर हिट हो जाए. अगर आपकी फ़िल्म फ्लॉप हो गई तो सब भूल जाते हैं. ऐसा ही कुछ मेरे साथ हुआ था.

फ़िल्म क्लिक भी तो बहुत ज़्यादा सफल नहीं रही, लेकिन फिर भी आप चर्चा में हैं.

हां, आप कह सकते हैं कि पिछली बार पब्लिसिटी के चलते भी मेरा नुक़सान हुआ था, लेकिन तब मैं बॉलीवुड में नई थी और यहां की मार्केटिंग के तौर-तरीक़ों से वाक़िफ़ नहीं थी. अब मैं पूरी तैयारी के साथ आई हूं.

साउथ सिनेमा और बॉलीवुड में क्या फ़र्क़ महसूस करती हैं?

बहुत ज़्यादा फ़र्क़ तो महसूस नहीं हुआ, क्योंकि मेरी हिंदी फ़िल्म के निर्देशक संगीथ सिवन भी साउथ के ही हैं. उनके साथ मैं पहले भी काम कर चुकी थी. इसलिए उनके साथ पहले जैसा ही माहौल बन जाता है. हां, अगली फ़िल्मों में काम करने के दौरान जो फ़र्क़ दिख रहा है, वह यह है कि यहां की फ़िल्म मेकिंग काफ़ी बड़े स्केल पर और ज़्यादा समय में होती है, जबकि साउथ में दो-तीन महीनों में ही फ़िल्में बनकर तैयार हो जाती हैं.

आने वाले प्रोजेक्ट्स के बारे में बताएं.

अभी दो फ़िल्में खलबली और दिल तो दीवाना है, बनकर तैयार हैं, जिनमें खलबली पहले रिलीज़ होगी. इस कॉमेडी फ़िल्म में मेरे साथ निखिल द्विवेदी, राजपाल यादव, चंकी पांडे और सुरेश मेनन भी नज़र आएंगे. अजय चंडोक की इस फ़िल्म में आपको जी भर कर हंसने का मौक़ा मिलेगा. इसके अलावा एक फ़िल्म फ्लोर पर है, जिसका नाम अभी तय नहीं किया गया है.

साउथ छोड़कर बॉलीवुड में जमने का इरादा है?

नहीं, ऐसा नहीं है. साउथ फ़िल्मों की वजह से ही मुझे वह मुक़ाम हासिल हुआ है, जिसकी वजह से लोग मुझे आज जानते हैं. इसलिए उन्हें छोड़ने का तो सवाल नहीं उठता. मैं अभी भी एक तमिल फ़िल्म नान अवल अधू कर रही हूं. इसके अलावा और भी कई प्रोजेक्ट हैं, जिनकी स्क्रिप्ट पढ़ रही हूं.

एक ही समय में इतनी भाषाओं की फ़िल्में कर रही हैं. लैंग्वेज पर कमांड कैसे कर लेती हैं?

शुरुआत में जब मुंबई से साउथ गई थी, तब बहुत प्रॉब्लम हुई थी. मेरी तमिल, तेलुगु और कन्नड़ में से किसी भी भाषा पर पकड़ नहीं थी. एक्सप्रेशंस में भी बहुत परेशानी होती थी. कड़ी मेहनत के अलावा काफ़ी समय लग गया डायलॉग डिलीवरी और एक्सप्रेशन ठीक करने में.

राजेश एस कुमार
ritika@chauthiduniya.com

फ़िल्म रिव्यू

तो बात पक्की

भारतीय समाज में लड़की की शादी को लेकर घर के सभी सदस्य आज भी परेशान देखे जाते हैं. एक ओर तनाव यह होता है कि घर में सयानी लड़की बैठी है तो दूसरी ओर फ़िक्र इस बात की भी रहती है कि वह जहां जाए, उसे ऐशो-आराम से भरपूर ज़िंदगी जीने को मिले. ऐसे ही तनाव और फ़िक्र की खिचड़ी पकाई है केदार शिंडे ने, जिसमें मसाला डालने का काम किया है तब्बू, शरमन जोशी, युविका चौधरी, वत्सल सेठ और अयूब ख़ान ने. इस कहानी का नाम रखा गया है तो बात पक्की. फ़िल्म में राजेश्वरी (तब्बू) अपनी बहन निशा (युविका) के लिए लड़का तलाश रही होती हैं. उनकी चाहत है कि निशा को एक बेहतर जीवनसाथी मिले. इसके लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार हैं. अचानक उनसे राहुल (शरमन जोशी) टकरा जाता है और उन्हें ख़ूब भाता है. राहुल की सादगी, शराफत और इंजीनियरिंग की पढ़ाई उन्हें काफ़ी प्रभावित करती है. वह निशा की शादी राहुल से कराना चाहती हैं, इसलिए वह राहुल को अपने घर पर किराए पर रहने के लिए फुसलाती हैं और बताती हैं कि उसकी मकान मालकिन उसे महीने की पहली तारीख़ को घर से बाहर निकलने के लिए कहेगी और दो-चार दिन रहने देने की एवज में पूरे महीने का किराया वसूलेगी. राहुल ख़ुशी-ख़ुशी राजेश्वरी की बात मान लेता है. राजेश्वरी अपनी मां को यह बात बताने गांव जाती है. मां राजेश्वरी से कहती है कि वह बेटी नहीं, बेटा है. इस पर राजेश्वरी महिलाओं के शोषण और भ्रूण हत्या को आधार बनाते हुए कहती हैं कि वह बेटा नहीं, बेटी ही है. बस लड़कियों के अस्तित्व को पहचान देने की ज़रूरत है. उन्हें अपने परिवार की परवाह है. लोग जिस दिन इस सच समझ लेंगे कि बेटियां बेटों से ज़्यादा लायक़ हैं, उसी दिन देश की आधी समस्या यूं ही दूर हो जाएगी. कहानी को आगे बढ़ाते हुए राजेश्वरी की छोटी बहन निशा शादी के लिए शहर आ जाती है और उसकी मुलाक़ात राहुल से होती है. मध्यमवर्गीय परिवारों में शादी के लिए लड़के और लड़की को मिलवाने का वाले नाटकीय अंदाज़ को ढंग से फ़िल्माया गया है. निशा और राहुल एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं. तभी राजेश्वरी के पति सुरेंद्र (अयूब खान) के किसी रिश्तेदार को एक कमरे की ज़रूरत होती है. युवराज यानी वत्सल सेठ की एंट्री होती है और उसके हाव-भाव और रईसी देखकर राजेश्वरी फिर से प्रभावित हो जाती हैं. वह राहुल से निशा का ब्याह कराने का फ़ैसला त्याग कर युवराज को मन ही मन पसंद करने लगती हैं. मुहल्ले का बहाना बनाकर राजेश्वरी राहुल को घर से निकाल देती हैं, इस बात की परवाह किए बिना कि निशा के मन पर क्या बीतेगी. आगे की कहानी राहुल और युवराज में से किसी एक को चुनने की उलझन से गुज़रती है, जो व्यवस्थित तरीक़े से फ़िल्माई गई है. फ़िल्म के आख़िरी दृश्यों में जब राजेश्वरी को अपनी ग़लती का अहसास होता है, तब सुरेंद्र उसे समझाने की आड़ में दर्शकों को संदेश देता है कि कोई भी फ़ैसला करते वक़्त हम अक्सर उसे भगवान की मर्जी का नाम दे देते हैं, चाहे वह सही हो या ग़लत. फिर आख़िर में दोष भी उसी पर मढ़ देते हैं. ऐसा करना अपने आप से जी चुराना है. शादी की पार्टी में अपनी पड़ोसिनों के साथ बातचीत करते हुए तब्बू एक मध्यमवर्गीय परिवार की महिला का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो अपनी हैसियत से ज़्यादा बड़बोलापन और नज़ाकत दिखाती हैं. फ़िल्म के गाने नीरस हैं. युविका बेहद ख़ूबसूरत लगी हैं, जबकि तब्बू की उम्र स्क्रीन पर छिपाए नहीं छिप रही है. उनका भद्दा मेकअप आंखों को चुभता है. वत्सल सेठ नाक़ाम रहे हैं, जबकि शरमन हमेशा की तरह रोल में फिट बैठे. फ़िल्म को काफ़ी ब्राइट रंगों के साथ प्रस्तुत किया गया है. फ़िल्म देश के छोटे शहरों और ग्रामीण इलाक़ों में पसंद की जा सकती है, पर बड़े शहरों और युवाओं के बीच यह बिल्कुल नहीं चल पाएगी.

रीतिका सोनाली
ritika@chauthiduniya.com

फ़िल्म प्रिव्यू

लाहौर

भारत-पाक संबंध बॉलीवुड का हमेशा पसंदीदा विषय रहा है, लेकिन अब तक ज़्यादातर फ़िल्में युद्ध की पृष्ठभूमि पर ही बनाई गईं. नवोदित निर्देशक संजय पूरण सिंह चौहान ने फ़िल्म लाहौर में लीक से हटकर किक बॉक्सिंग को आधार बनाया है. इसमें भारत-पाक के किक बॉक्सरों के बीच मुक़ाबला दिखाया गया है. फ़िल्म में कुछ नए कलाकार हैं, जिनमें अनहद और श्रद्धा दास प्रमुख हैं. इसके अलावा फारुख शेख, नफीसा अली, आशीष विद्यार्थी, मुकेश रिशी और सुशांत सिंह जैसे कलाकार भी नजर आएंगे. फ़िल्म को कई अंतरराष्ट्रीय समारोहों में सराहा जा चुका है. इसी को देखते हुए इंटरनेशनल कंपनी वार्नर ब्रदर्स ने फ़िल्म की पब्लिसिटी और वितरण की ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ली है. इसके अलावा फ़िल्म चक दे इंडिया में योगदान कर चुके रॉब मिलर भी इस प्रोजेक्ट में शामिल हैं. किक बॉक्सिंग में फाइट दृश्यों का विशेष महत्व होता है. इसके लिए खास तौर पर विश्व प्रसिद्ध एक्शन कोरियोग्राफर टोनी लिउ सिउ हंग की सेवाएं ली जा रही हैं. इतना ही नहीं, स्पाइडर मैन, शरलॉक होम्स, टर्मिनेटर-3, द विंची कोड जैसी फ़िल्मों में आवाज़ देने वाली लिसबेथ स्कॉट ने पहली बार किसी भारतीय फ़िल्म में गाना गाया है. संगीत वेयन शार्प का है. फ़िल्म की कहानी दो बॉक्सरों के इर्द-गिर्द घूमती है, जो भारत और पाकिस्तान का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं. इसमें खिलाड़ियों, मैनेजमेंट, ब्यूरोक्रेट एवं उच्च अधिकारियों के बीच कई तरह की गहमागहमी बड़े रोचक ढंग से पेश की गई है. यह फिल्म देश प्रेम के जज्बे को दर्शाती है और 19 मार्च को रिलीज़ होगी.

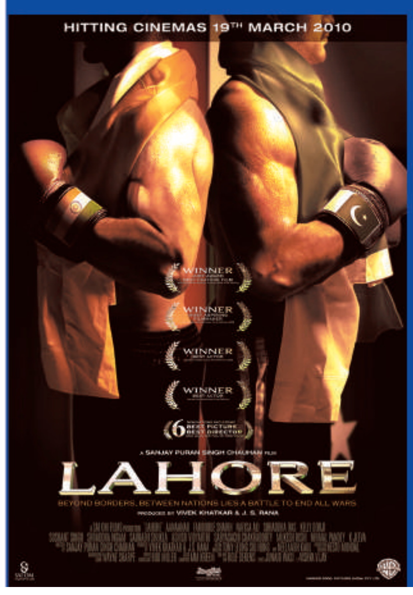

चौथी दुनिया

बिहार झारखंड

दिल्ली, 8 मार्च-14 मार्च 2010

www.chauthiduniya.com

जल्द बजेगा चुनावी डंका

जिस तरह से नीतीश सरकार की तैयारियां चल रही हैं और राजद समेत दूसरे तमाम विरोधी दलों के नेता बिहार में अचानक सक्रिय हो गए हैं, उससे लगता है कि दोनों ओर से चुनावी दांव पेंच का खेल जल्दी ही शुरु होने वाला है.

सरोज सिंह

तमाम हां-ना के बीच इस बात के पक्के संकेत मिलने लगे हैं कि बिहार में जल्द ही चुनाव का डंका बज सकता है. चुनाव आयोग से लेकर सरकार व विपक्ष की तैयारी ज़ोर पकड़ने लगी है. जदयू व भाजपा खेमा इस आकलन में जुट गया है कि अगर जल्द चुनाव कराए जाएं तो नफ़ा ज़्यादा होगा या नुक़सान. इधर विपक्षी दल भी नीतीश की हर चाल का जवाब देने के लिए अपनी चुनावी तैयारियों को अंजाम देने में मशगूल हैं. विपक्षी दलों को लगता है कि नीतीश सरकार जिस तरह से अनेक तरह के विवादों में घिरती जा रही है उससे घबराकर बजट सत्र के अंतिम दिनों में ही चुनावी लड़ाई के लिए ललकारा जा सकता है. इसके अलावा तमाम इशारों के बावजूद बजट सत्र से पहले मंत्रिमंडल का विस्तार न होने से भी इस संभावना को बल मिला है कि सरकार समय से पूर्व चुनाव कराने को तैयार हो सकती है. सरकार से जुड़े थिंक टैंक माने जाने वाले लोगों की राय है कि चुनावी साल में विपक्षी दलों व जदयू के असंतुष्ट नेताओं को गोलबंद होकर मज़बूत होने का मौक़ा नहीं दिया जाए. महादलित एकता रैली में उमड़ी भीड़ से एनडीए नेताओं के चेहरे वैसे ही खिले हैं.

फरवरी के अंतिम सप्ताह में चुनाव आयोग की बड़ी फौज बिहार के कई शहरों में घूमकर फोटो युक्त वोटर लिस्ट बनाने की समीक्षा में जुटी थी. पता चला कि राज्य में अब तक वोटर लिस्ट में लगभग 57 फ़ीसदी वोटरों के फोटो शामिल किए जा चुके हैं जबकि राष्ट्रीय औसत 82 फ़ीसदी है. चुनाव आयुक्त डॉ एस वाई कुरैशी ने पटना में अपनी टीम से साफ़ कहा कि जल्द से जल्द फोटोयुक्त मतदाता सूची का काम पूरा किया जाए. इस काम की समीक्षा के लिए चुनाव पर्यवेक्षकों की टीम फिर राज्य के दौरे पर आएगी.

अभी तक के कार्यक्रम के अनुसार फोटोयुक्त मतदाता सूची का फाइनल प्रकाशन जून के पहले सप्ताह में होना है. ग़ौरतलब है कि समय से पहले चुनाव कराने का पेंच भी यहीं फंसा हुआ है. सामान्य प्रकिया में मतदाता सूची के फाइनल प्रकाशन के बाद ही चुनाव कराए जा सकते हैं. इसलिए अप्रैल के अंतिम सप्ताह व मई में चुनाव होने की संभावना कुछ कमज़ोर दिखती है. लेकिन एनडीए की सोच है कि अप्रैल के अंतिम सप्ताह तक परीक्षाएं ख़त्म हो जाएंगी और मौसम भी ठीक रहेगा. इसके अलावा बाढ़ का राजनीतिक नुक़सान भी नहीं पड़ेगा. विपक्षी दलों को भी तैयारी का समय कम मिलेगा और जदयू के नाराज़ नेता इतनी जल्दी गोलबंद नहीं हो पाएंगे. सरकार के थिंक टैंक भी इसी नज़रिये से चीजों को देख रहे हैं.

उधर चुनाव आयोग से जुड़े सूत्र बताते हैं कि विशेष परिस्थिति में पुरानी मतदाता सूची पर भी चुनाव कराए जा सकते हैं. समय से पूर्व चुनाव कराने का दूसरा विकल्प जून-जुलाई का महीना है. मतदाता सूची के प्रकाशन के बाद किसी भी दिन चुनाव कराए जा सकते हैं. मौसम के आधार पर भी चुनाव के इस महीने को ख़ारिज़ नहीं किया जा सकता क्योंकि पहले भी इस महीने में राज्य में वोट डाले जा चुके हैं. 1991 के लोकसभा चुनाव में राज्य में जून के आख़िरी सप्ताह में वोट डाले गए थे. यही नहीं 1999 के लोकसभा चुनाव में तो राज्य में अगस्त-सितंबर में वोट पड़े थे. नीतीश के रणनीतिकार दोनों विकल्पों को साथ-साथ लेकर चल रहे हैं, क्योंकि सत्ता पक्ष में यह आम राय बनती जा रही है कि समय से पहले चुनाव का फ़ायदा उन्हें ज़रूर मिलेगा. बताया जाता है कि अरुण जेटली जब पटना आए थे तो उस समय नीतीश कुमार से उनकी इस मसले पर बात भी हुई थी. भाजपा के नए अध्यक्ष नितिन गड़करी के लिए बिहार का चुनाव काफ़ी अहम है इसलिए वह कोई भी जोख़िम नहीं उठाना चाहते हैं और नीतीश कुमार के साथ पूरे तालमेल के साथ चुनावी अखाड़े में उतरना चाहते हैं. जदयू-भाजपा दोनों को लगता है कि राज्य में माहौल उनके अनुकूल है. लेकिन अगर विपक्षी दलों को अब ज़्यादा समय दिया गया तो हो सकता है कि उनकी ताक़त बढ़ जाए. कांग्रेस को संगठन मज़बूत करने का समय भी जदयू-भाजपा नहीं देना चाहती है. राहुल गांधी के दौरे से राज्य में जैसा माहौल बनने लगा है उसे रोकने के लिए ज़रूरी है कि कांग्रेस को संगठन बनाने का मौक़ा ही नहीं दिया जाए.

डॉ एस वाई कुरैशी

चुनाव आयुक्त डॉ एस वाई कुरैशी ने पटना में अपनी टीम से साफ़ कहा कि जल्द से जल्द फोटोयुक्त मतदाता सूची का काम पूरा किया जाए. इस काम की समीक्षा के लिए चुनाव पर्यवेक्षकों की टीम फिर राज्य के दौरे पर आएगी. अभी तक के कार्यक्रम के अनुसार फोटोयुक्त मतदाता सूची का फाइनल प्रकाशन जून के पहले सप्ताह में होना है.

जदयू के रणनीतिकार यह भी नहीं चाहते कि नाराज़ चल रहे नेताओं को गोलबंदी का ज़्यादा से ज़्यादा समय दिया जाए. उन्हें लगता है कि अभी नाराज़ नेता उहापोह की स्थिति में हैं. वे यह तय नहीं कर पा रहे कि किस हद तक नीतीश कुमार का विरोध किया जाए. विरोध का मंच क्या हो. अभी तो कुछ नाराज़ नेता लोजपा और कुछ कांग्रेस की राह देख रहे हैं. जदयू के थिंक टैंक यह नहीं चाहते हैं कि सभी नाराज़ नेता एक मंच पर आएं, जिसके लिए यह ज़रूरी है कि उन्हें संभलने का वक़्त नहीं दिया जाए. शराब घोटाले के बाद और किसी घोटाले का जिन्न बाहर ना निकले इसलिए कोशिश पूरी है कि समय से पहले चुनाव करा लिए जाएं. महादलित वोट को अपने पाले में लाने का जो प्रयोग नीतीश सरकार कर रही थी उसके नतीजों से भी सत्तापक्ष का सीना तन गया है. पटना के गांधी मैदान में महादलितों की उमड़ी भीड़ से यह साफ़ हो गया कि एक नया वोटर वर्ग अब एनडीए के साथ है. नीतीश कुमार को भरोसा है कि ये वोटर बूथों पर जाकर उन्हें एक बार फिर सत्ता की चाबी हासिल करने में मदद करेंगे.

यही वजह है कि महादलित एकता रैली में नीतीश कुमार बार- बार यह बात दोहराते रहे कि अपनी एकता आपलोग बनाए रखिए और चुनाव में अपनी ताक़त का अहसास करा दीजिए. उन्होंने महादलितों से वोटर लिस्ट में अपना नाम जुड़वाने की अपील भी की. ज़ाहिर है कि महादलित नीतीश के लिए नई ताक़त हैं. ऐसी ताक़त जो उन्हें फिर से मुख्यमंत्री की कुर्सी दिला सकती है. यही वजह है कि विपक्षी खेमा इस महादलित एकता की काट खोजने में लगा है. लोजपा नेता रामविलास पासवान कहते हैं कि दलितों की एकता को तोड़कर महादलितों की एकता का नाटक किया जा रहा है. उनका आरोप है कि महादलितों के लिए नीतीश ने घोषणा करने के अलावा किया ही क्या है. दलितों को गुमराह कर उनके वोट हासिल करने का खेल चल रहा है. लेकिन लोजपा व राजद इस साज़िश को सफल नहीं होने देंगे. समय से पूर्व चुनाव कराने के संकेत पर श्री पासवान ने कहा कि जितनी जल्दी यह सरकार चली जाए बिहार के लिए वही अच्छा होगा. हम चुनाव के लिए पूरी तरह तैयार हैं जब भी हमें ललकारा जाएगा हम चुनावी अखाड़े में कूदने को तैयार हैं. राजद के प्रदेश अध्यक्ष अब्दुल बारी सिद्दकी की मानें तो जनता नीतीश सरकार को उखाड़ फेंकने का मन बना चुकी है इसलिए जब भी चुनाव हो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है. राजद हर पल चुनाव को तैयार है. विपक्षी दलों को लगता है कि चुनाव कराने को लेकर नीतीश भ्रम बनाकर रखना चाहते हैं. ऐसा इसलिए कि विपक्षी दल चुनाव की घोषणा के साथ हड़बड़ी में गड़बड़ी कर उनका रास्ता आसान कर दें. इसलिए ही एनडीए विधायकों की बैठक में नीतीश कुमार ने दोनों बात साथ-साथ कही कि चुनाव समय पर होंगे और आपलोग तैयारियों में जुट जाइए.

दरअसल नीतीश कुमार भी पल-पल बदल रही राजनीतिक परिस्थितियों को ग़ौर से देख रहे हैं. विपक्षी चुनौतियों से कहीं ज़्यादा उनकी चिंता का विषय दल के अंदर की चुनौतियां हैं. नीतीश कुमार अच्छी तरह जानते हैं कि ललन सिंह कमज़ोर खिलाड़ी नहीं हैं. दिल्ली से लेकर पटना तक वह जो खेल खेल रहे हैं उस पर नीतीश कुमार की पैनी नज़र है. उत्पाद विभाग में घोटाले के आरोपों के बाद तो नीतीश कुमार काफ़ी चौकन्ने हो गए हैं. इसलिए पूरी कोशिश है कि संकट में डालने वाले ऐसे खिलाड़ियों को कम से कम समय दिया जाए. यही कारण है कि नीतीश कुमार का खेमा चाहता है कि समय से पूर्व चुनाव कराकर ख़फ़ा चल रहे नेताओं के मंसूबों को ध्वस्त कर दिया जाए.

feedback@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया

जिन कुष्ठों की छाया को देखकर लोग भागते थे, उन कुष्ठों के बीच दीन किस प्रकार रहते हैं और किस प्रकार कार्य करते हैं यह देखने दूर-दूर से लोग आने लगे.

बीसीसीएल ने प्राचार्या पद के लिए विज्ञापन निकाला था, मगर यह प्रकिया केवल यहीं तक सीमित रह गई. आगे कुछ नहीं हुआ.

चौथी दुनिया

झारखंड बना अफीम की खेती का गढ़

झारखंड में माओवादियों के सघन प्रभाव वाले इलाकों में सैकड़ों एकड़ ज़मीन पर अफीम की खेती हो रही है. झारखंड में नक्सलियों के कंधे पर अंतर्राष्ट्रीय ड्रग माफ़िया कई वर्षों से अपनी गोटी लाल कर रहे हैं. कई बार यह बात सामने आ चुकी है कि बिहार के मोहनिया और सासाराम के भूमिगत हेरोइन कारखानों को कच्चे माल की आपूर्ति झारखंड के माओवाद प्रभावित इलाक़ों से हो रही है. माओवादी दरअसल किसानों को अफीम की खेती के लिये प्रेरित करते हैं और उसे ब्राउन शुगर में परिणत कर ड्रग माफ़िया के हवाले कर देते हैं. ड्रग माफ़िया से उन्होंने अफीम से ब्राउन शुगर बनाने तक की तकनीक हासिल कर ली है. इसके बाद हेरोइन बनाने तक की प्रक्रिया मोहनिया और सासाराम में होती है. माओवादियों के गोला-बारूद और हथियारों की ख़रीद की अर्थव्यवस्था में इस धंधे का बड़ा योगदान होता है. माओवादी ही क्यों पूरे विश्व में ग़ैरक़ानूनी हथियारबंद हिंसक गतिविधियां ड्रग स्मगलिंग से चल रही है.

चाहे आतंकवाद हो, नक्सलवाद हो या फिर ख़ुफ़िया संस्थाओं के ग़ैरक़ानूनी अभियान, उनके भरण-पोषण का यह एक बड़ा आधार है. अब नशीले पदार्थों की तस्करी आम आपराधिक या तस्कर गिरोहों के हाथ में नहीं रही. ख़ुफ़िया एजेंसियों और आतंकवादी संगठनों ने इसपर क़ब्ज़ा कर लिया है. सासाराम और मोहनियां उत्तर भारत में ड्रग स्मगलिंग के पुराने केंद्र रहे हैं. यहां के ड्रग माफ़ियाओं के तार अफ़ग़ानिस्तान और दूसरे अंतर्राष्ट्रीय ड्रग माफ़िया से जुड़े हैं. यहां से हेरोइन, मार्फिन आदि मुंबई के रास्ते अंतर्राष्ट्रीय बाजार तक पहुंचता है. उत्तरी छोटानागपुर प्रमंडल में पहली बार 2006 में चतरा ज़िले में अफीम की खेती की विधिवत शुरुआत हुई. शुरुआती दौर में स्थानीय बाज़ारों में खपत के अलावा यहां की अफीम के ख़रीदार भी नेपाली माओवादी ही थे. 40 से 50 हज़ार रुपए किलो अफीम, एक लाख रुपए किलो ब्राउन शुगर और लाख-डेढ़ लाख रुपए प्रति किलो हेरोईन बेची जाने लगी.

इस ग़ैर क़ानूनी व्यवसाय में लागत की तुलना में मुनाफ़ा हज़ारों गुणा ज़्यादा है. कम लागत और बेतहाशा मुनाफ़े को देखकर पूरा का पूरा गांव अफीम की खेती करने में जुट गया. अफीम की पैदावार से नक्सलियों को बतौर लेवी कमीशन मिलने लगा. अफीम की खेती में होने वाले ख़र्च के साथ-साथ नक्सलियों ने ग्रामीणों को पुलिस से सुरक्षा भी मुहैया कराई. अंततः स्थिति यह हो गई कि हज़ारीबाग और चतरा ज़िले के दो दर्जन से अधिक गांव में क़रीब 8 हज़ार हेक्टेयर भूमि पर अफीम की खेती बेख़ौफ़ हो रही है. पुलिस प्रशासन को यह ठिकाना पता है. लेकिन वह कुछ नहीं कर सकती. चतरा ज़िले के पत्थलगड्डा, गिद्धौर, तेतरिया, नोनगांव, जोरी, बलबलद्वारि आदि दर्जनों गांवों और हज़ारीबाग ज़िले के कटकमसांडी, ईचाक, बड़कागांव आदि प्रखंडों के 40 प्रतिशत से अधिक गांवों में अफीम नोटों की बरसात कर रही है और माओवादियों की पूरी अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनी हुई है. नक्सलियों के साथ ग्रामीणों की भी पौ बारह है. अफीम से आमदनी की तुलना में इसकी खेती में लागत लगभग शून्य है. पोस्ते के बीज की लागत दो सौ से चार सौ रुपए प्रति किलो है. इसकी खेती में न सिंचाई की ज़रूरत है न खाद या किसी कृषि उपकरण की. हज़ारीबाग और चतरा ज़िले के पहाड़ी और पठारी क्षेत्रों में खरीफ या रबी फसलों की पैदावार आंशिक होने के कारण तंगहाली से जूझते कृषकों के लिए अफीम की खेती मुंह मांगा वरदान साबित हो रही है.

अफीम की पैदावार से हो रहे लाभ को देखते हुए कृषकों ने खरीफ या रबी फसलों की ओर ध्यान देना ही छोड़ दिया. कहां 10 रुपए किलो चावल और कहां 50 हज़ार रुपए किलो अफीम. नक्सलियों की परोक्ष और प्रत्यक्ष सहभागिता के कारण यहां के अफीम का कारोबार मादक पदार्थों के अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क से जुड़ गया है. इसका एक बड़ा ख़रीदार पाकिस्तान की ख़ुफ़िया एजेंसी आईएसआई भी है और छोटानागपुर का अफीम, हेरोईन और ब्राउनशुगर बांग्लादेश भी जा रहा है. एक नक्सली सूत्र के अनुसार, सन् 2007 के मई महीने में नेपाल-बिहार के सीमावर्ती जंगल में नेपाल, बिहार और झारखंड के माओवादियों की एक संयुक्त बैठक में झारखंड के माओवादियों के सामने, पाकिस्तानी ख़ुफ़िया एजेंसी आईएसआई को हेरोईन और ब्राउनशुगर बेचने का प्रस्ताव आया था. लेकिन झारखंड के माओवादियों ने इस डील को देशद्रोह की संज्ञा दी. आईएसआई को इसे बेचने से इंकार कर दिया. आईएसआई ने अपने नेपाली एजेंटों के माध्यम से झारखंड के माओवादियों को ब्राउनशुगर के बदले अत्याधुनिक हथियार देने की भी पेशकश की. लेकिन यहां के माओवादियों ने मना कर दिया. लेकिन यह वितरण भी परिपक्व होने के लिए बिहार के डेहरी और सासाराम स्थित गुप्त कारखानों में बेची जा रही अफीम, हेरोईन ब्राउनशुगर और मॉर्फिन की शक्ल में आईएसआई के एजेंटों तक पहुंच रही है.

आईएसआई वह मादक पदार्थ नेपाल, कलकत्ता और बांग्लादेश के रास्ते मंगवा रहा है. हज़ारीबाग और चतरा ज़िलों में पैदा हुई अफीम का एक थोक ग्राहक बिहार का डिहरी और सासाराम है. जानकारी के अनुसार सासाराम के एक गुप्त ग़ैरक़ानूनी कारखाने में अफीम को परिष्कृत करके मार्फिन तक बनाया जाता है. वैसे यहां की अफीम का बाज़ार कलकत्ता, यूपी, बिहार, कानपुर, महाराष्ट्र, बनारस और झारखंड के बेरमो, फुसरो, गोमिया, बोकारो है. अफीम को अरब देशों को भी भेजी जाती है. हज़ारीबाग से पटना-रांची जानेवाली नेशनल हाइवे के लाइन होटलों में भी इसे बेचा जाता है. नेशनल हाइवे पर इस मादक पदार्थ के ज़्यादातर ख़रीदार लम्बी दूरी के ट्रक चालक हैं. चालकों के अनुसार इसके सेवन से नींद नहीं आती है तथा मस्ती छा जाती है. इसे होटल कर्मचारी मुहैया कराता है अथवा बच्चे कपड़े के थैलों में इसे लिए फेरी लगाते हैं.

इन होटलों में ब्राउनशुगर की एक खुराक 50 रुपए प्रति पुड़िया है. इसे कभी भी सावधानी से देखा जा सकता है. लाइन होटलों के अलावा अफीम और ब्राउनशुगर हज़ारीबाग ज़िले के बड़ी चौक, चौपारण, डेमोटांड, इचाक, महाजनगंज और चतरा के बंगरा मोड पर भी बेची जाती है. बिहार का गया ज़िला में भी यहां के मादक पदार्थों का बाज़ार है. ऐसा नहीं है कि अफीम के खेतों की तरफ़ झांकने से भी परहेज़ करने वाली पुलिस ने इन मादक पदार्थों की खुलेआम बिक्री के विरुद्ध प्रथम दृष्टया कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं की हो. लेकिन शायद ही किसी मामले में साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हों. लिहाज़ा आरोपी अदालत से बरी होते रहे हैं. हज़ारीबाग और चतरा ज़िलों में गत दो वर्षों में एनडीपीएस एक्ट के तहत दो दर्जन से ज़्यादा मामले विभिन्न थानों में दर्ज हुए. 27 आरोपियों को पकड़ कर जेल भी भेजा गया. लेकिन साक्ष्य के अभाव में सभी बरी हो गए. पुलिस के इस बयान पर हैरत होती है कि जब्त किये गए ब्राउन शुगर को रांची स्थित प्रयोगशाला में मादक पदार्थ साबित नहीं किया जा सका. ज़ाहिर है कि अफीम की ग़ैरक़ानूनी पैदावार से हो रही बेतहाशा अवैध कमाई में नक्सलियों के साथ साथ अन्य रसूखवाले भी हिस्सेदार हैं. 2008 में हज़ारीबाग ज़िले के मुफस्सिल थाना क्षेत्र में एक लंगड़े व्यक्ति के साथ एक महिला को ब्राउनशुगर के साथ पकड़ा गया था. दोनों को जेल भी भेजा गया. पर दोनों ही जेल से छूट गए. इनके पास से जब्त ब्राउनशुगर को अदालत में ब्राउनशुगर साबित ही नहीं किया जा सका. यही नहीं 2005 में खादी का कुर्ता-पायजामाधारी एक व्यक्ति को इंडिका कार में ब्राउनशुगर के पैकेट के साथ गुप्त सूचना पर मुफस्सिल पुलिस ने पकड़ा था. इसे भी फौरी तौर पर जेल भेजा गया, पर वह भी रिहा हो गया. इसके पास से बरामद पदार्थ ब्राउन शुगर ही था, लेकिन अदालत में इसे प्रमाणित नहीं किया जा सका. ऐसे अनेक मामले हैं. जेल से छूट गए सभी आरोपी स्पॉट और सेंटर बदल कर अपने पुराने धंधे में लगे हैं. अफीम हेरोइन या ब्राउनशुगर बेचने या कैरियर के काम में अब युवतियों व महिलाओं को भी शामिल किया गया है.

कुछ दिन पूर्व 4 फरवरी को रांची में करोड़ों रुपये के ब्राउन शुगर के साथ पकड़े गए मनोज कुमार नामक अपराधी ने पुलिस और मीडिया को बताया कि इसका आपूर्तिकर्ता चतरा ज़िले का था. अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार तलाश चुके यहां के मादक पदार्थों का कारोबार अत्यंत द्रुतगति से फैल रहा है. दो वर्ष पूर्व अफीम की फसलों को नष्ट करने का पुलिस ने निर्णय लिया था. पुलिस ने सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों के साथ साथ शहर के नजदीक इचाक व बड़कागांव प्रखंड के ग्रामीण इलाक़ों में अफीम के लिए उगाई गई पोस्ते की फसल को छिटपुट नष्ट करना शुरू भी किया गया था लेकिन इससे माओवादियों की भवें टेढ़ी हो गई. पुलिस दुबक कर चुपचाप बैठ गई. नक्सलियों के हथियार ख़रीदने के कुल बजट में अफीम से मिलने वाली कमीशन का 80 प्रतिशत योगदान है. पुलिस के साथ मुठभेड में नक्सलियों की हज़ारों राउंड गोलियां ख़र्च होती हैं. एक थ्रीनॉट थ्री या वनफीटन गोली का दाम एक सौ से दो सौ रुपए हैं नक्सलियों के पास बेशक़ीमती इन्सास एके फोर्टी सेवन, एके फिफ्टी सिक्स, प्वाइंट नाइन एमएम, रॉकेट लांचर जैसे आधुनिक हथियारों के ज़ख़ीरे का सहारा अफीम ही है.

अफीम की खेती में होने वाले ख़र्च के साथ-साथ नक्सलियों ने ग्रामीणों को पुलिस से सुरक्षा भी मुहैया कराई. अंततः स्थिति यह हो गई कि हज़ारीबाग और चतरा ज़िले के दो दर्जन से अधिक गांव में क़रीब 8 हज़ार हेक्टेयर भूमि पर अफीम की खेती बेख़ौफ़ हो रही है. पुलिस प्रशासन को यह ठिकाना पता है.

रंजन कुमार सिंह
feedback@chauthiduniya.com

केंद्रीय अस्पताल नर्सिंग छात्राओं के भरोसे चल रहे हैं

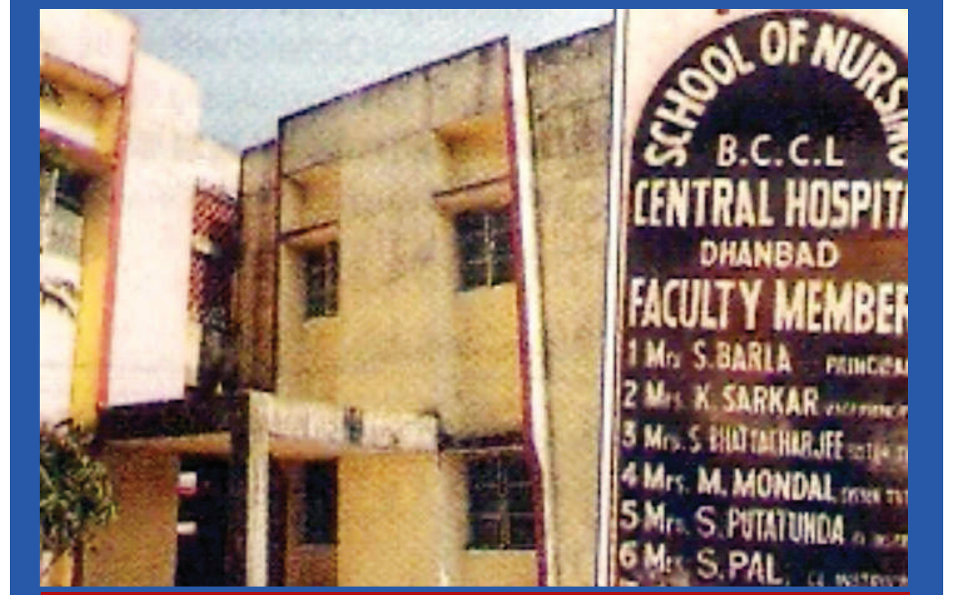

नर्सिंग स्कूल का भवन और फैकल्टी बोर्ड

धनबाद का स्कूल ऑफ नर्सिंग बीसीसीएल के लिए किसी दुधारू गाय से कम नही है. स्कूल से कंपनी को आर्थिक लाभ के अलावा 120 नर्सों की सेवा बिना किसी अतिरिक्त ख़र्च के मिल रही है. स्वीकृत पदों के हिसाब से यहां नर्सों की संख्या काफ़ी कम है. कंपनी ने इसके लिए कोल इंडिया मुख्यालय को पत्र लिखा है, लेकिन अभी तक इसका कोई समाधान नज़र नहीं आता है. नर्सों की कमी का सबसे ज़्यादा प्रभाव इसके मुख्य चिकित्सा संस्थान केंद्रीय अस्पताल पर पड़ रहा है. इस अस्पताल में इस समय दूसरे कर्मचारियों और नर्सों की संख्या केवल 128 है. जबकि सिस्टर इंचार्ज केवल 27 हैं.

कोल इंडिया के इस सबसे बड़े अस्पताल की चिकित्सा व्यवस्था इन 128 नर्सों के भरोसे नहीं चल सकती. अस्पताल में कुल 27 विभाग है और हर विभाग में नर्स की सेवा तीन पाली में ली जाती है. तीनों पाली में ड्यूटी के लिए यदि हर विभाग में दो-दो नर्स भी चाहिए तो कम-से-कम 162 कर्मचारी व नर्सों की आवश्यकता होगी. ऐसी स्थिति में नर्सिंग स्कूल की छात्राओं की इस व्यवस्था में अहम भूमिका रहती है. स्कूल ऑफ नर्सिंग में कुल 90 छात्राएं अध्ययनरत हैं तथा 30 छात्राएं इंटर्नशिप करती हैं. इस तरह कुल 120 नर्सिंग छात्राएं नियमित रूप से केंद्रीय अस्पताल की चिकित्सकीय व्यवस्था से जुड़ी हुई है. छात्राओं को तीन साल की पढ़ाई तथा छः माह का इंटर्नशिप करनी पड़ती है. हर सत्र में तीस-तीस छात्राएं होती है. नामांकन के तीन माह के बाद छात्राओं को प्रशिक्षण के लिए केंद्रीय अस्पताल भेज दिया जाता है. कहने को यह प्रशिक्षण होता है लेकिन यह किसी ड्यूटी से कम नही होता है. लगातार आठ घंटे तक उन्हें अस्पताल में समय देना पड़ता है. इंटर्नशिप छात्राओं को पूर्णकालिक ड्यूटी देनी पड़ती है. इस लिहाज़ से देखें तो पता चलेगा कि इतने बडे अस्पताल की नर्सिंग व्यवस्था इन छात्राओं पर काफ़ी कुछ निर्भर है. लेकिन बीसीसीएल प्रबंधन इनके लिए किसी तरह से मानदेय का प्रबन्ध नहीं करता है. उलटे कंपनी को ही अपनी पढ़ाई के लिए 30,500/- रूपये का भुगतान करना पड़ता है. इंटर्नशिप छात्राओं को भी कंपनी को पैसा देना पड़ता है. यदि स्कूल ऑफ नर्सिंग नहीं हो तो प्रबन्धन को अस्पताल चलाना भी मुश्किल हो जाता. नर्सिंग की उत्थान के लिए भारत सरकार के कोल माईंस लेवर वेलफेयर आर्गेनाइजेशन (सीएमएलडब्लूओ) ने केंद्रीय अस्पताल में वर्ष 1951 में स्कूल ऑफ नर्सिंग खोला था. यहां प्रतिवर्ष 30 छात्राओं का नामांकन होता है. उनकी प्रायोगिक कक्षाएं केंद्रीय अस्पताल में होती है. सीएमएलडब्लूओ का बाद में कोल इंडिया में विलय हो गया. इस कारण केंद्रीय अस्पताल एवं नर्सिंग स्कूल दोनों बीसीसीएल के अधीन हो गए. यह नर्सिंग स्कूल झारखंड के नर्सिंग स्कूल में अव्वल स्थान रखता है. वेलफेयर आर्गेनाइजेशन स्कूल के छात्राओं को पहले की व्यवस्था में मानदेय के रुप में कुछ राशि देता था. पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्हें कंपनी में ही नियोजित भी किया जाता था. बीसीसीएल में भी यह परंपरा जारी रही लेकिन 2002 के बाद बीसीसीएल में यहां के छात्राओं के लिए नियोजन की परंपरा समाप्त हो गई. नामांकन के बाद ही छात्राओं से करार कर लिया जाता है कि कंपनी उन्हें नियोजन देने के लिए बाध्य नहीं है. वर्ष 1997 में बीसीसीएल के बी.आई.एफ.आर. में विलय हो जाने के साथ ही इस स्कूल में नया नामांकन लेना बंद कर दिया गया.

इसके बाद 2002 में नर्सिंग काउंसिल से अप्रूवल लेकर स्कूल खुला लेकिन नई व्यवस्थाओं के साथ. स्कूल ऑफ नर्सिंग की छात्राओं को जहां बीसीसीएल से मानदेय मिलता था वहीं अब सेल्फ फाइनेंस स्कीम लागू कर दी है. बीसीसीएल प्रबन्ध इनके रहने के लिए सिर्फ स्कूल भवन, छात्रावास, बिजली-पानी एवं शिक्षण का प्रबंध करता है. यहां शैक्षणिक स्तर पर देखें तो प्राचार्या समेत सिर्फ़ पांच शिक्षिकाएं हैं, जो कि तीन पालियों में पढ़ा रही हैं. नियमानुसार इस नर्सिंग संस्थान में कम-से-कम 9 शिक्षिकाएं होनी चाहिए. बताया जाता है कि 31 मई 2006 में प्राचार्या सुशीला बारनाल के सेवानिवृत होने के बाद से यह पद रिक्त पड़ा है. उप प्राचार्या कनक सरकार तभी से प्रभारी प्राचार्या के रूप में काम संभाल रही हैं. प्राचार्या का पद अधिकारी संवर्ग का है जबकि उप प्राचार्या का पद गैर अधिकारी . बीसीसीएल ने पूर्व प्राचार्या के सेवानिवृत्त होने के बाद प्राचार्या पद के लिए विज्ञापन निकाला था मगर यह केवल विज्ञापन तक ही रह गया. आज तक न तो नए प्राचार्य की नियुक्ति हुई है और न ही कनक सरकार को प्राचार्य बनाया गया है. कुल मिलाकर देखा जाए तो यह नर्सिंग स्कूल कंपनी प्रबंधन की उपेक्षा का शिकार हो रहा है. नर्सिंग पढ़ने वाली छात्राएं बीसीसीएल को प्रति वर्ष 9 लाख रूपये का भुगतान करती हैं. तीन साल की पढ़ाई पूरी करने के बाद छात्राओं को 6 माह का इंटर्नशिप केंद्रीय अस्पताल में करना पड़ता है. इंटर्नशिप करने वाली छात्राओं को जहां टाटा कंपनी 5000 रुपए एवं सेल कंपनी 2900 रूपए का मानदेय देती है वहीं यहां की छात्राओं को उलटे बीसीसीएल को इसके लिए 3000 रुपए देना पड़ता है. सीएमएलडब्लूओ ने जिस भावना के साथ यहां नर्सिंग स्कूल खोला था वह भावना कब की ग़ायब हो चुकी है. बीसीसीएल के लिए यह एक अच्छी आय का साधन बन चुका है.

स्कूल ऑफ नर्सिंग में कुल 90 छात्राएं अध्ययनरत हैं तथा 30 छात्राएं इंटर्नशिप करती हैं. इस तरह कुल 120 नर्सिंग छात्राएं नियमित रूप से केंद्रीय अस्पताल की चिकित्सकीय व्यवस्था से जुड़ी हुई है. छात्राओं को तीन साल की पढ़ाई तथा छः माह का इंटर्नशिप करनी पड़ती है. हर सत्र में तीस-तीस छात्राएं होती है.

राजीव रंजन
feedback@chauthiduniya.com

सेंट्रल हॉस्पीटल, धनबाद

टिकट पाने वालों की बेचैनी बढ़ी

राजेश सिन्हा

बिहार विधानसभा चुनाव आने में हालांकि अभी काफी समय है, फिर भी उसकी सुगबुगाहट आरंभ हो गई है. यही कारण है कि विधायक बनकर सत्ता सुख भोग रहे राजनीतिज्ञों के साथ-साथ पराजय का स्वाद चखने वालों व बीते पांच वर्षो से विधानसभा चुनाव लड़ने की मंशा पालने वालों की बैचेनी बढ़ गई है. सत्ता सुख भोग रहे विधायकों को टिकट मिलने और नहीं मिलने पर होने वाले गम से वे परेशान है. वह इस बार जीत का ताज़ पहन सकेंगे या नहीं, यह चिंता कोढ़ में खाज का काम कर रही है. विधायकों के लिए नए परिसीमन के तहत होने वाले चुनाव के कारण जीत का गणित फ़िलवक्त गड़बड़ाया भी नज़र आ रहा है. नए और हारे हुए प्रत्याशी टिकट पाने की जुगत में लगे हुए हैं. टिकट पाने के इच्छुक उम्मीदवार अपने-अपने आकाओं के दरबार का चौखट चूमते-चूमते परेशान हैं. दरबारी-दरबारी करने से परेशान हो चुके नेताओं को आश्वासन तो मिल रहा है. बावजूद इसके अभी भी वह आश्वस्त नहीं है कि उन्हें टिकट मिलेगा ही. यही कारण है कि अपने-आपको भावी उम्मीवार बताने वाले अपने आकाओं का चौखट छोड़ने को तैयार नहीं है. कई ऐसे भी नेता हैं जो टिकट नहीं मिलने की स्थिति में अन्य पार्टी का दामन थामने से भी परहेज नहीं करेंगे. ऐसे नेता अन्य दलों के शीर्ष नेताओं के संपर्क में हैं. अभी तक किसी भी पार्टी ने अपने प्रत्याशी की घोषणा तो नहीं की है लेकिन लगभग सभी पार्टियों में ज़्यादातर सीटों के कई दावेदार माने जा रहे हैं. इस तरह की स्थिति के कारण लगभग सभी पार्टी में उहापोह की स्थिति बनती जा रही है और अंदर ही अंदर आपस में ही नेताओं के रिश्ते तल्ख भी होते जा रहे हैं. सबसे बुरी स्थिति है सत्तारूढ़ पार्टी जदयू की. इस पार्टी की स्थिति देखकर राजनीतिक पंडितों ने भी कहना शुरू कर दिया है कि अगर पार्टी नेताओं के बीच सामंजस्य नहीं बनाया गया तो पार्टी की लुटिया डूबना तय है. इस तरह की स्थिति वैसे तो बिहार के लगभग कई विधानसभा क्षेत्रों की है लेकिन खगड़िया विधानसभा क्षेत्र की स्थिति सबसे विकट है. ऐसा कहा जा रहा है कि खगड़िया विधानसभा की जदयू विधायक श्रीमती पूनम देवी यादव के घोर विरोधी कहे जाने वाले नेताओं ने उनसे टिकट छिनवाने के सभी प्रयास तेज़ कर दिए हैं. हालांकि सिटिंग उम्मीदवार को अभी तक टिकट दिए जाने की परंपरा लगभग सभी पार्टी की रही है. बावजूद इसके उनकी ही पार्टी के जिलाध्यक्ष सोनेलाल मेहता, प्रदेश महासचिव अरूण यादव, युवा प्रदेश अध्यक्ष सुबोध सिंह पटेल सहित कुछ अन्य पार्टीजनों को भी जदयू के टिकट का प्रबल दावेदार बताया जा रहा है. कुछ अन्य घोर विरोधी भी हैं जो टिकट पाने की दौड़ में अपने-आपको कही नहीं पाने के बाद भी वर्तमान विधायक की टांग खींचने की स्थिति में हैं. अगर पूनम के घोर विरोधियों की मंशा पूरी हुई तो वह कांग्रेस या राजद का दामन थामने से परहेज नहीं कर सकती हैं. पर इस मसले पर ख़ुद पूनम अभी तक कुछ भी खुलकर नहीं कहना चाहतीं है. या यूं कहें कि वह मीडिया के सामने आने से परहेज कर रही हैं. बावजूद इसके ऐसा हुआ तो खगड़िया विधानसभा में एनडीए का सूर्य अस्त होने से कतई इंकार नहीं किया जा सकता है. इस बात का इल्म उनके विरोधियों को भी है. सबको पता है कि अगर किसी पार्टी ने उन्हें टिकट नहीं भी दिया तो वह अपने विरोधियों की बोलती बंद कर सकती हैं. उनके अपने पास के वोटरों की संख्या कम नहीं है. कम से कम बीस हजार मतदाता उन्हें निर्दलीय प्रत्याशी होने के बाद भी हर हालत में वोट देंगे ही. निर्दलीय प्रत्याशी के तौर पर पहले भी खड़ी होकर पूनम अपना रुतबा दिखा चुकी हैं. पिछले चुनाव के आंकड़ों को देखें तो जदयू प्रत्याशी पूनम देवी यादव ने लगभग दस हज़ार मतों के अंतर से राजद समर्थित वामपंथी उम्मीदवार गीता यादव को धूल चटाया था. लगभग साढ़े दस हज़ार मत लेकर लोजपा उम्मीदवार सत्यदेव सिंह तीसरे तथा लगभग दस हज़ार मत लेकर निर्दलीय प्रत्याशी ई.धर्मेन्द्र कुमार चौथे स्थान पर रहे थे. इन आंकड़ों को नज़रंदाज़ करते हुए उनके समर्थकों का कहना है कि अगर श्रीमती पूनम के साथ ऐसा भी हुआ तो यह तय है कि वह विपक्षियों का जायका तो बिगाड़ ही सकती हैं.

पूनम यादव | साहेवउद्दीन | धर्मेंद्र कुमार | रणवीर यादव | मनोहर कुमार

जानकार तो यहां तक कहते हैं कि विधायक बनने के बाद पांच साल तक मंत्री पद पाने की चाहत पाले बैठी विधायक पूनम की आस अंततः पूरी नहीं हो सकी. नतीजतन वह जदयू से खार खाए बैठी हैं. संभव है कि मंत्री पद देने का आश्वासन देने वाली पार्टी का दामन थाम लें. वैसे ऐसी संभावना कम ही दिखती है. जदयू के राष्ट्रीय अध्यक्ष शरद यादव की ख़ासमख़ास कही जाने वाली पूनम के साथ अगर ऐसा हुआ तो फिर युवा प्रदेश महासचिव सुबोध सिंह पटेल के लिए टिकट पाने की राह आसान हो सकती है. यहां दीगर तथ्य यह है कि उनके भी विरोधियों की संख्या कम नहीं है. सुबोध को अगर टिकट मिल भी गया तो उनकी पार्टी के नेता ही उनका बेड़ा गर्क करने से हिचकेंगे नहीं. अब अगर राजद-लोजपा की बात की जाए तो वहां भी घमासान की स्थिति है. हालांकि लोजपा और राजद में तालमेल तो है, पर अंदर ही अंदर एक दूसरे के ख़िलाफ़ पार्टी नेताओं के बीच अलग-अलग खिचड़ी भी पक रही है. राजद नेता खगड़िया विधानसभा क्षेत्र से अपनी पार्टी के नेता को खड़ा कर लोजपा का समर्थन पाने की आस पाले बैठे हैं जबकि लोजपा का तर्क अलग है. लोजपा नेताओं का कहना है पिछले चुनाव में राजद समर्थित वामपंथी उम्मीदवार गीता यादव का जो हश्र हुआ, वह किसी से भी छुपा नहीं है. इसलिए राजद-लोजपा गठबंधन की सेहत को देखते हुए हर हालत में लोजपा के प्रत्याशी भाग्य आज़माएंगे और राजद का समर्थन उन्हें हासिल रहेगा. इस तरह की स्थिति को देखकर कहीं भी यह कहने में संकोच नहीं है कि राजद-लोजपा में भावी प्रत्याशियों की लंबी फौज खड़ी है. राजद से धर्मेंद्र कुमार चुनावी अखाड़े में कूदने को बैचेन हैं तो अन्य भी अपने आपको टिकट का प्रबल दावेदार बता रहे हैं. ई.धर्मेंद्र का यह भी कहना है कि पार्टी के द्वारा उन्हें टिकट नहीं दिया गया तो वह चुनाव जनता की मांग पर निर्दलीय भी चुनाव लड़ सकते हैं. इसके लिए वह कई माह से जनसंपर्क अभियान में जुटे हुए भी हैं. जनता का स्पष्ट कहना है कि विकास के मामले में किसी भी जनप्रतिनिधि ने अभी तक खुलकर अपना हाथ नहीं खोला. नतीजतन उन्हें हर हालत में चुनाव लड़ना चाहिए. कांग्रेस की सेहत भी खगड़िया विधानसभा चुनाव क्षेत्र में सही नहीं दिख रही है. युवा कांग्रेस सदस्य तथा पुराने कांग्रेसियों के बीच अच्छे रिश्ते दिखाई नहीं दे रहे हैं. युवा कांग्रेस की कमान खगड़िया नगर परिषद के सभापति मनोहर कुमार यादव ने संभाल रखी है. पूर्णिया के पूर्व सांसद राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव का उन्हें भरपूर समर्थन भी मिल रहा है. पप्पू यादव का भरपूर समर्थन मिलने से आहलादित मनोहर ने अपने स्तर से व्यापक पैमाने पर कांग्रेस से युवाओं को जोड़ा भी है. यही कारण है कि उनके बढ़ते क़द से पुराने कांग्रेसी उनसे खुश नहीं लग रहे हैं. वैसे युवा कांग्रेस सदस्य तथा पुराने कांग्रेसियों के बीच रिश्ता बेहतर बनाने की जुगत लगाई जा रही है. बसपा और अन्य छोटी-मोटी पार्टियों की स्थिति फ़िलवक्त इतनी भी साफ़ नहीं हो सकी है जिसपर कोई टिप्पणी की जा सके.

लोजपा और राजद में तालमेल तो है, पर अंदर ही अंदर एक दूसरे के खिलाफ पार्टी नेताओं के बीच अलग-अलग खिचड़ी भी पक रही है. राजद नेता खगड़िया विधानसभा क्षेत्र से अपनी पार्टी के नेता को खड़ा कर लोजपा का समर्थन पाने की आस पाले बैठे हैं जबकि लोजपा का तर्क अलग है.

feedback@chauthiduniya.com

लाचार-बदहाल राजेंद्र कुष्ठाश्रम

धनंजय मिश्र

राजेंद्र कुष्ठाश्रम में कुष्ठ रोगियों की दुनिया वीरान हो गई है. आलम यह है कि बदहाली के कारण प्रायः कुष्ठ मरीज़ अपनी भूख मिटाने के लिए कुष्ठाश्रम को छोड़कर अन्य शहरों में चले गए हैं. महज़ चंद मरीज़ ही यहां कभी कभार आते हैं और चले जाते हैं. वे भी अगल-बगल के गांवों-बाज़ारों में भीख मांगने पर मजबूर हैं. ऐसा नहीं है कि यह हाल आश्रम में रहने वाले लोगों का ही है. भूखों मरने की नौबत से यहां के कर्मचारी एवं पदाधिकारी भी सालों से जूझते रहे हैं. सीवान ज़िला मुख्यालय से 22 किमी पश्चिम मैरवा प्रखंड मुख्यालय के निकटवर्ती हरिराम ब्रह्म मंदिर के एक किमी दक्षिण की ओर स्थित इस राजेंद्र सेवा आश्रम को लोग अनुग्रह नगर के नाम से भी जानते हैं. इसे वित्तीय संकट ने इस क़दर अपना विकराल रूप दिखाया है कि हरा-भरा अनुग्रह नगर बिल्कुल वीरान सा हो गया है.

तकरीबन पैंतीस एकड़ में फैली कुष्ठों की इस दुनिया में ज़िंदगी जीने की तमाम सुविधाएं उपलब्ध थीं. लेकिन अब यहां सब कुछ चौपट हो जाने के बाद कुष्ठाश्रम बर्बाद हो गया है. 1953 में स्थापित राजेंद्र सेवा आश्रम का उद्देश्य कुष्ठों की उपेक्षित निराशा भरी ज़िंदगी को खुशहाल करना था. परमहंस बाबा राघव दास द्वारा स्थापित इस कुष्ठाश्रम का कार्यभार जब 10 मार्च 1954 को जगदीश दीन ने संभाला . तब इस उद्देश्य की पूर्ति बहुत तेज़ी के साथ होने लगी. 27 अक्टूबर 1954 को तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेंद्र प्रसाद ने इस आश्रम के भवन का शिलान्यास किया था.

एक समय था जब श्री दीन द्वारा किए जा रहे कुष्ठों की सेवा की सराहना पूरे देश में की जाने लगी थी. जिन कुष्ठों की छाया को देखकर लोग भागते थे, उन कुष्ठों के बीच दीन किस प्रकार रहते हैं और किस प्रकार कार्य करते हैं यह देखने दूर-दूर से लोग आते थे. श्री दीन और उनके कर्मचारियों की सेवा और लगन के कारण 1990 तक लगभग 9 हजार कुष्ठ रोगियों को अपने रोग से मुक्ति मिली. 19 जनवरी 1981 को तत्कालीन राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने यहां पर सर्जरी भवन का शिलान्यास किया. इस प्रकार 1954 से 1973 तक के 19 साल के सफ़र में इस आश्रम ने अपने यहां नौ एसईटी सर्वे एजूकेशन ट्रीटमेंट यूनिटों की स्थापना की. तब यह भारत के सबसे बड़े कुष्ठाश्रम के रूप में जाना जाने लगा. 1976 में यह ट्रेनिंग सेंटर बन गया.

जहां भारत के अलावा अनेक प्रदेशों से आए डाक्टरों को कुष्ठ रोग के निदान की शिक्षा दी जाती थी. यहां तक कि इसका अपना ब्लड बैंक था और कुष्ठों को रोज़गार देने के लिए कई लघु उद्योग स्थापित किए गए थे. लेकिन हस्तकला, ऊन बुनाई , प्लास्टिक काम्पलेक्स, बढ़ईगिरी, सिलाई , वेल्डिंग , मोमबत्ती, वैशाली अभ्यास पुस्तिका निर्माण, कृषि औजार निर्माण, पत्ते की कटोरी का निर्माण के ये सभी लघु उद्योग उस समय सक्रिय थे.

लेकिन इस आश्रम को सबसे ज़ोरदार आघात तब लगा, जब 25 अक्टूबर 1987 को जगदीश दीन का देहांत हो गया. सारी व्यवस्था अव्यवस्था में बदल गई और सारी गतिविधियां रूक गईं. देखते ही देखते कुछ महीनों में ही कुष्ठाश्रम के सभी 170 शय्याएं खाली हो गई. यद्यपि इस संस्था को पहले सरकारी स्रोत से प्रतिवर्ष एससीटी गतिविधियों के लिए लगभग 42 लाख और उद्योग धंधों को चलाने के लिए 15 लाख रूपए मिलते थे. इसके अतिरिक्त उद्योग-धंधे से भी आय होती थी. विश्व स्वास्थ्य संगठन व राज्य सरकार से दवाइयां प्राप्त होती थीं. पर आज आश्रम में दवाइयां तो दूर रहीं. रूई-बैंडेज तक मुहाल है. सारण प्रमंडलीय तीन ज़िलों के ज़िलाधिकारी इस संस्था के पदेन उपाध्यक्ष हैं. सीवान के डीएम बाला मुरूगन डी के अनुसार इस कुष्ठाश्रम के परिसर में मेडिकल कॉलेज के लिए निरीक्षण प्रतिवेदन राज्य सरकार को भेजा गया है. संस्था के सचिव विद्याभूषण तिवारी का कहना है कि राजेन्द्र कुष्ठाश्रम में मेडिकल कॉलेज व जनरल हॉस्पीटल खोलने के लिए पूरे आश्रम की डिजिटल फोटोग्राफी करायी गई है. उन्होंने बताया कि फोटोग्राफी की एक प्रति यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ कैलिफोर्निया को भेजा गया है. क्योंकि गत साल इस कुष्ठाश्रम का निरीक्षण यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ कैलिफोर्निया की डा. शोभा सहाय ने किया था. जिन्होंने इस संबंध में भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय को यथाशीघ्र यहां पर मेडिकल कॉलेज व जेनरल हॉस्पीटल की स्थापना करने का आग्रह किया है. उन्होंने विश्वास व्यक्त किया है कि इसके प्रारंभ होने से काफ़ी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं सुगमता पूर्वक मिल सकेंगी. सचिव तिवारी के कथनानुसार यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ कैलिफोर्निया ने भी राजेंद्र कुष्ठाश्रम को अपना पूर्ण सहयोग व संसाधन मुहैया कराने का प्रस्ताव दिया है.

राजेन्द्र कुष्ठ सेवाश्रम के वेबसाइट राजेन्द्र सेवाश्रम डाट ओएनजी पर भी इन डिजिटल चित्रों को डालने का कार्य यहां चल रहा है. इसके पूर्व में भी कई मंत्रियों-सांसदों ने यहां मेडिकल कॉलेज खोलने की अनुशंसा की है. लेकिन वादे व अनुशंसाओं से काम चलने वाला नहीं है.

वीरान हालत में राजेंद्र कुष्ठाश्रम

1953 में स्थापित राजेंद्र सेवा आश्रम का उद्देश्य कुष्ठों की उपेक्षित निराशा भरी जिंदगी को खुशहाल करना था.तकरीबन पैंतीस एकड़ में फैली कुष्ठों की इस दुनिया में जिंदगी जीने की तमाम सुविधाएं उपलब्ध थीं, लेकिन अब यहां सब कुछ चौपट हो गया है.

feedback@chauthiduniya.com

नेपाल के तराई इलाक़े की प्रमुख वाणिज्यक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक नगरी जनकपुर में 55 अनुज्ञप्तिधारी मनी चेंजर इन दिनों ख़ाली हैं.

इमामगंज में नक्सलियों का शासन चलता है

झारखंड की सीमा से लगे बिहार के गया ज़िले का इमामगंज विधान सभा क्षेत्र पूरी तरह से नक्सलियों की जद में है. यहां के लोग प्रतिबंधित नक्सली संगठन भाकपा माओवादी के प्रभाव क्षेत्र में हैं. सुशासन का दावा करने वाले तमाम पुलिस व प्रशासनिक अधिकारियों का आदेश यहां पूरी तरह से बेअसर साबित हो रहा है. वहीं दूसरी ओर नक्सलियों के किसी भी फ़रमान को यहां के लोग सर आंखों पर ले लेते हैं. सच कहें, तो नक्सलियों ने बिहार के महत्वपूर्ण विधान सभा क्षेत्र माने जाने वाले इमामगंज में सुशासन की हवा निकाल कर रख दी है. वे रात तो रात, दिन के उजाले में भी जो चाहते हैं, करते हैं.

विधान सभा के अंतर्गत तीन प्रखंड और पांच थाने, जैसे इमामगंज, डुमरिया, बांकेबाज़ार, रौशनगंज और कोठी पूरी तरह से माओवादियों के क़ब्ज़े में है. सरकारी विकास के तमाम दावे यहां फेल नज़र आते हैं. प्रखंड या अंचल कार्यालय हो या रेफरल अस्पताल, कन्या प्रोजेक्ट विद्यालय हो या बिजली बोर्ड का विद्युत उपकेंद्र या फिर कोई भी अन्य सरकारी कार्यालय, इन्हें देखने से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि यहां सुशासन के दावों में कितना दम है. किसी भी सरकारी महकमे में नियमित रूप से शायद ही कोई पदाधिकारी या कर्मचारी आता हो. 2005 में जब डुमरिया प्रखंड कार्यालय पर माओवादियों का हमला हुआ था, तो तत्कालीन बीडीओ ने किसी प्रकार भागकर अपनी जान बचाई थी. नतीजा है कि आज सुशासन में भी यहां कोई भी सरकारी कर्मचारी व अधिकारी डरे–सहमे रहकर ही अपने पदस्थापित स्थल पर पहुंचते हैं और खानापूरी कर दोपहर में ही अपने सुरक्षित ठिकाने पर लौट आते हैं. क्षेत्र के सरकारी भवन और मोबाइल टावर भी माओवादियों के रहमों–करम पर है. सड़क हो या अन्य कोई विकास कार्य, कोई भी ठेकेदार बिना लेवी दिए कोई भी कार्य नहीं करा सकता है.

पिछले साल नक्सलियों ने इमामगंज विधान सभा क्षेत्र के दर्ज़न भर सरकारी भवन तथा इतनी ही संख्या में मोबाइल टावर को डायनामाइट लगाकर उड़ा दिया. इसके अलावा दो पुलिस कर्मियों समेत आधा दर्ज़न लोगों की हत्या कर चार सरकारी रायफलें भी छीन ली थीं. इसके अलावा कई ट्रकों व यात्री वाहनों को दिन–दहाड़े ज़ब्त कर जंगल में ले जाकर उन्होंने अपनी ताक़त का एहसास सुशासन की सरकार को करा दिया है.एक तरह से कहें, तो पूरे इमामगंज विधान सभा क्षेत्र में ही माओवादियों की समानांतर सरकार चलती है. छोटी–बड़ी नक्सली घटनाओं को छोड़ भी दें, तो पिछले साल लोक सभा चुनाव के समय इमामगंज विधान सभा क्षेत्र के बांके बाज़ार थाना अन्तर्गत भलुआर मध्य विद्यालय भवन को माओवादिओं ने डायनामाइट से उड़ा दिया था. कारण चुनाव में इस भवन को कलस्टर सेंटर बनाया जाना है. वहीं मतदान के दिन सोलह अप्रैल को प्राथमिक विद्यालय, सिंघापुर में दो पुलिसकर्मियों समेत चार लोगों की हत्या कर माओवादिओं ने हथियार लूट लिए थे. इसके बाद चार जुलाई को डुमरिया से गया आ रही महारानी नाम की दो यात्री बस को दिनदहाड़े मैगरा के समीप से अगवा कर लिया और पांच जुलाई को दोनों बसों को छकरबंधा के जंगल में ले जाकर फूंक डाला. पुलिस कोई कार्रवाई करने में पूरी तरह असमर्थ दिखी.

2009 में दीपावली से पूर्व बीस अक्टूबर को केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ माओवादिओं ने इमामगंज–डुमरिया की सीमा पर सशस्त्र हथियारों का प्रदर्शन करते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, सोनिया गांधी और गृहमंत्री पी.चिदंबरम का पुतला फूंका था. इससे पूर्व 2005 के विधान सभा चुनाव में इमामगंज विधान सभा क्षेत्र से लोजपा प्रत्याशी, पूर्व सांसद राजेश कुमार की मैगरा के समीप माओवादिओं ने हमला कर हत्या कर दी थी. समग्र बिहार में सुशासन का ढिंढोरा पीटने वाले विधान सभाध्यक्ष अपने क्षेत्र इमामगंज में माओवादिओं के ख़िलाफ़ मुक़म्मल कार्रवाई कर सुशासन का एहसास लोगों को क्यों नही कराना चाहते हैं, यह सवाल आज भी लोगों को चौंका रहा है. हक़ीक़त है कि स्वास्थ्य और शिक्षा में बेहतरी का दावा करने वाले सुशासन की सरकार में भी डुमरिया का रेफरल अस्पताल और प्रोजेक्ट कन्या विद्यालय अब तक नहीं खुल पाया है. यहां पदस्थापित चिकित्साकर्मी और शिक्षक दूसरे जगह कार्य करते हैं. बिजली देने का घोषणा करने वाले इस क्षेत्र के प्रतिनिधि और विस अध्यक्ष डुमरिया व इमामगंज विद्युत उपकेंद्र को चालू कराने में असमर्थ हो रहे हैं. हालांकि शेरघाटी अनुमंडल के अंतर्गत आने वाले इस विधान सभा क्षेत्र के संबंध में एक वरीय पुलिस पदाधिकारी का कहना है कि माओवादिओं के ख़िलाफ़ लगातार कार्रवाई जारी है, लेकिन यदि आंकड़े देखे जाएं, तो माओवादी घटना की तुलना में पुलिसिया उपलब्धि नगण्य नज़र आती है. केंद्र और राज्य सरकार की अधिसंख्या विकास योजनाएं इस क्षेत्र में ठप पड़ी हैं.

इस क्षेत्र के लोग पुलिस–प्रशासन के ख़िलाफ़ खुलेआम बोलते नज़र आते हैं, लेकिन माओवादिओं के ख़िलाफ़ चूं करने की हिम्मत कोई नही जुटा पाता. पूरा इमामगंज विधान सभा क्षेत्र प्रतिबंधित नक्सली संगठन भाकपा माओवादी की गिरफ़्त में है, लेकिन इस क्षेत्र के प्रतिनिधि और विस अध्यक्ष उदय नारायण चौधरी पटना से लेकर अपने क्षेत्र तक कहीं भी माओवादियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने का कोई बयान नहीं दिया है.

सुनील सौरभ
feedback@chauthiduniya.com

नीतू बनी भोजपुरी फ़िल्म निर्माता

इस समय लोगों की नज़रों में बिहार काफ़ी पिछड़ा हुआ प्रदेश माना जाता है, लेकिन मैं यही कहूंगी कि भारत में जो भी बड़ी–बड़ी प्रतिभाएं हैं, बिहार में ही पैदा हुई हैं. यह बात अलग है कि बिहार के लोग अपने मातृक्षेत्र को बताने में कतराते हैं. पर मैं हमेशा से ही अपने प्रदेश बिहार के लिए कुछ करना चाहती हूं. कहती हैं नीतू चंद्रा. बिहार से बॉलीवुड तक का सफ़र अपने दम पर करने वाली नीतू चंद्रा ने हिंदी फ़िल्मों में एक ख़ास जगह बना ली है. *गरम मसाला* में उनके कॉमिक किरदार से लेकर फ़िल्म *रण* के संजीदा रोल तक उनके अभिनय में एक परिपक्वता दिखाई देती है. लेकिन नीतू अपने जन्म स्थान बिहार से बेहद लगाव रखती हैं इसीलिए तो वह भोजपुरी फ़िल्मों में क़दम रखने को तैयार हैं. पर अगर आप सोच रहे हों कि नीतू जल्द ही किसी भोजपुरी फ़िल्म में ठुमके लगाती नज़र आएंगी तो आपको निराशा ही हाथ लगेगी. दरअसल नीतू भोजपुरी फ़िल्मों में पदार्पण ज़रूर कर रही हैं लेकिन बतौर अभिनेत्री नहीं, बतौर निर्माता. नीतू भोजपुरी फ़िल्म *देशवा* का निर्माण कर रही हैं. फ़िल्म भोजपुरी फ़िल्मों के कई बिग स्टार्स के अलावा बॉलीवुड के नामचीन सितारों को लेने की भी बात चल रही है. यह फ़िल्म पूरी तरह से कमर्शियल फ्लेवर में बन रही है. नीतू इस फ़िल्म को त्योहारों के आसपास धूमधाम से रिलीज करने की योजना बना रही हैं. जब उनसे पूछा गया कि वह इस फ़िल्म में अभिनय क्यों नहीं कर रही हैं तो उनका जवाब था कि वह एक वक़्त में एक ही काम करना पसंद करेंगी. उनके मुताबिक़ आजकल भोजपुरी भोजपुरी भाषा की फ़िल्मों का बाज़ार बढ़ता जा रहा है लेकिन इन फ़िल्मों में अश्लीलता का स्तर भी बढ़ता जा रहा है. इसलिए उन्होंने तय किया है कि वह सिर्फ़ साफ़ सुथरी पारिवारिक फ़िल्म में ही काम करेंगी जिसे पूरे परिवार के साथ बैठकर देखा जा सके.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

भारू के संकट से मुश्किल में ज़िंदगानी

जनकपुर में मनीचेंजर की दुकान में पसरा सन्नाटा

नेपाल के तराई इलाक़े में भारतीय मुद्रा के अभाव का अभूत पूर्व संकट छाए रहने से इस इलाक़े में रहने वाले भारतीय मूल के लाखों नेपाली नागरिकों का जीवन बदतर हो कर रह गया है. भारतीय सीमा से लगा नेपाल का मैदानी भूभाग जिसे स्थानीय स्तर पर मधेश क्षेत्र कहा जाता है, में खाद्यान्न, कपड़ा स्टेशनरी समेत अधिकांश उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति भारतीय बाज़ारों से होती है. यह वह विस्तृत भूभाग है जहां भारतीय मूल के नेपाली नागरिकों की संख्या बहुतायत में है. दोनो देशों के नागरिकों के बीच रोटी–बेटी के संबंध एवं भारतीय बाज़ारों पर इनकी निर्भरता के कारण इन्हें हमेशा भारतीय रूपयों की आवश्यकता होती है. जबकि तराई इलाक़े में भारतीय रूपये के अभाव की स्थिति यह है कि नेपाल राष्ट्र बैंक के जनकपुर स्थित क्षेत्रीय कार्यालय में भारतीय रूपया लेने के लिए लंबी लाईन लगती है. जहां नेपाली नागरिकों को पहचान पत्र दिखाने के पश्चात अधिकतम 1500 रूपया दिया जाता है. तराई इलाक़े में भारू के संकट का बेजा फ़ायदा उठा रहे हैं बड़े –बड़े पूंजीपति जो भारू के बदले नेरू औने–पौने क़ीमत पर ख़रीद कर मालामाल हो रहे हैं. ग़ैर क़ानूनी तरीक़े से चलने वाले इन मनी चेंजरों की पौ–बारह का आलम यह है कि अन्तराष्ट्रीय मुद्रा विनमय दर (एक भारतीय रूपया बराबर एक रूपया साठ पैसा नेपाली रूपया) की स्थिति एक भारू रूपया बराबर दो नेरू रूपया तक पहुंच गया है.

यहां उल्लेखनीय है कि मित्र राष्ट्र होने के कारण दोनों देशों के नागरिकों को एक–दूसरे के यहां आने–जाने की पूरी छूट है. लोग एक से दूसरे देश बेधड़क आते–जाते हैं. ऐसे मे दोनो देशों में मुद्राओं का आदान–प्रदान स्वाभाविक है. दोनों देशों के प्रगाढ़ मैत्री संबन्ध, मुद्राओं का समान प्रचलन एवं भू–राजनैतिक परिस्थितियों के कारण सीमावर्ती क्षेत्रों में स्थित जयनगर, लदनियां, लौकही, सीतामढ़ी, मधवापुर, भिट्टामोड़, रक्सौल समेत अन्य भारतीय बाज़ार नेपाली उपभोक्ताओं से पटे रहते हैं. ये नेपाली उपभोक्ता बाज़ार में आवश्यक वस्तुओं की ख़रीदारी नेपाली रुपयों में करते हैं. सीमाई बाज़ारों में नेपाली रूपया बहुतायत में उपलब्ध रहता है. तराईवासियों की भारतीय बाज़ार पर निर्भरता तो क़ायम हैं किन्तु भारतीय रूपए का अभाव इन्हें हतोत्साहित कर रहा है. तराई इलाक़े में नेपाली रूपया मिलता नहीं और भारतीय बाज़ारों में कोई नेपाली रूपया लेना नहीं चाहता. भारतीय मूल के नेपाली नागरिक तराई में भारतीय रूपयों के अभूतपूर्व संकट को सरकार की उच्चस्तरीय साज़िश मानते हुए कहते हैं कि यह अघोषित आर्थिक नाकेबंदी है.

नेपाल के तराई इलाक़े की प्रमुख वाणिज्यक एवं ऐतिहासिक तथा धार्मिक नगरी जनकपुर जहां पूर्व में 55 अनुज्ञप्तिधारी मनी चेंजर इन दिनों ख़ाली हैं. राजर्षि जनक की राजधानी रही जनकपुर की हृदय स्थली भानु चौक पर भानु मनी चेंजर के प्रोपराइटर रवीन्द्र कुमार सिंह ने बताया कि तराई के बाज़ार में भारू है नहीं और नेपाल राष्ट्र बैंक ने प्रतिदिन मात्र 25000 रूपया देना निर्धारित कर दिया है. उन्होंने बताया कि लगभग एक माह पूर्व तक वे प्रतिदिन 10 से 12 लाख भारतीय रूपया बदलते थे जो इन दिनों मात्र 25000 रूपया रह गया है. अन्य सभी मनी चेन्जरों की हालत भी ऐसी ही है. रवीन्द्र सिंह आक्रोशित लहज़े में कहते हैं कि यदि शीघ्र तराई में भारू की पर्याप्त उपलब्धता नहीं हुई तो जनता सड़क पर उतरने को विवश हो जाएगी.

दूसरी तरफ़ विश्वराज डोगाना इसे शार्ट टाइम फेनोमिना मानते हुए कहते हैं कि स्थिति मे शीघ्र सुधार होगा. श्री डोगाना ने बताया कि नेपाल गंज, विराटनगर, भैरहवा, धनगढ़ी एवं पोखरा क्षेत्रीय कार्यालय में भारू का कोई अभाव नहीं है. जनकपुर एवं बीरगंज क्षेत्रीय कार्यालय में मांग के अनुरूप भारू की आपूर्ति नहीं होने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक को ज़िम्मेवार ठहराते हुये श्री डोगाना ने बताया कि रिजर्व बैंक मे नेपाल राष्ट्र बैंक का 16 अरब रूपया जमा है. इतनी ही रकम विभिन्न नेपाली वाणिज्यिक बैंको ने भी भारतीय बैंकों मे जमा कर रखा है. जबकि रिजर्व बैंक नेपाल को मात्र 4 अरब रूपये ही उपलब्ध करा पाता है. उन्होंने बताया कि तराई में भारू के संकट को देखते हुए नेपाल राष्ट्र बैंक ने आर.बी. आई. से भारू का निर्धारित कोटा बढ़ाने का अग्रह किया है. तराई वासियों के भारतीय रूपये पर निर्भरता को देखते हुए तत्काल प्रत्येक व्यक्ति को 1500 रूपये एवं मनी चेंजरों को 25000 रूपए दिए जा रहे हैं. भारतीय व्यापारियों द्वारा नेपाली बैंक से ड्राफ्ट बनाकर विभिन्न हिस्सों में भुगतान पर रोक लगाने से संबंध में डोगाना ने कहा कि आर. बी. आई. अधिक से अधिक लोगों को बैंकिंग व्यवस्था से जोड़ने तथा धन के अनामी प्रवाह को रोकने के लिए ऐसे क़दम उठाता रहता है. डोगाना ने बताया कि तराई वासी नेपाल के स्टेट बैंक ऑफ नेपाल, एवरेस्ट बैंक, एन. आई. सी. समेत अन्य बैंकों में नेपाली रूपया जमा कर एटीएम के माध्यम से भारतीय बैंकों से भारू प्राप्त कर सकते हैं. डोगाना के पास इन सवालों का कोई जवाब नहीं था कि सीमावर्ती क्षेत्र जहां 80 फ़ीसदी लोगों के पास पासबुक तक नहीं हैं. कैसे बैंकिंग की सुविधा उठा सकेंगे. यह तो हुई सरकार की बात. अब अगर अन्य स्रोतों पर नज़र दौड़ाते हैं. बाज़ार के जानकारों का कहना है कि तराई में भारू की आमद का प्रमुख स्रोत पर्यटन और सोने की तस्करी भी है. नेपाल में भारत की अपेक्षा सोना सस्ता होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय तस्कर भारू देकर सोना ख़रीदते थे. जिससे तराई में भारू की पर्याप्त उपलब्धता बनी रहती थी. इन दिनों भारत में नेपाल की अपेक्षा सोना सस्ता हो गया है. फलस्वरूप अब सोने की तस्करी भारत से नेपाल की ओर हो रही है. जिसका प्रतिफल तराई क्षेत्र में भारू का अभूतपूर्व संकट के रूप में सामने आया है. संकट गहराने के लिए नेपाल सरकार की उस नीति की भी आलोचना हो रही है जिसके तहत भारतीय व्यवसायियों के द्वारा नेपाली बैंकों से बनने वाले ड्राफ्ट पर प्रतिबंध लगाया गया है. संकट का कारण चाहे जो भी हों, किन्तु इतना स्पष्ट है कि इसका असर व्यापक है. नेपाल के गोलबाज़ार निवासी कपिलदेव राय भारू के लिए दर– दर भटक रहे हैं. उन्हें अपने बच्चे का इलाज दरभंगा (बिहार) में कराने के लिए भारू की ज़रूरत है. जबकि मनी चेंजरों ने हाथ खड़े कर दिए हैं. ऐसे में उन्हें समझ में नहीं आ रहा कि रास्ता क्या है. तराई के लाखों लोग रोज़ ऐसी समस्याओं से रूबरू हो रहे हैं. तो दूसरी तरफ़ तराई में भारू के संकट से नेपाल सीमावर्ती भारतीय बाज़ारों में भी मुर्दनी सी छाई हुई है. उत्तर बिहार में मुज़फ़्फ़रपुर के बाद दूसरा सबसे बड़ा कपड़ा मंडी माने जाने वाले जयनगर के चैम्बर ऑफ कामर्स के महासचिव अखिलेश्वर प्रसाद सिंह कहते हैं कि लगभग एक करोड़ रूपये के प्रतिदिन टर्न ओवर वाले जयनगर के व्यवसाय में नेपाली रूपयों की हिस्सेदारी 70 से 80 फ़ीसदी है. ऐसे में जहां प्रतिदिन लाखों नेपाली रूपए जाम पड़े हों, वहां व्यवसायियों की स्थिति का आकलन सहज ही किया जा सकता है. जयनगर चैम्बर ऑफ कामर्स ने भारतीय स्टेट बैंक से मुद्रा विनियम केन्द्र खोलने की मांग की है. एस. बी आई. के शाखा प्रबंधक बैदेही चरण शुक्ला ने बताया कि स्थानीय व्यवसायियों के आग्रह पर मुद्रा विनिमय केन्द्र खोलने का प्रस्ताव वरीय अधिकारियों को अग्रसारित किया गया है. उन्होंने बताया कि एस. बी. आई. ने वर्ष 86–87 में जयनगर समेत देश भर मे 100 शाखाओं में मुद्रा विनिमय केंद्र खोला था. जो इन दिनों लगातार घटता जा रहा है.

अखिलेश्वर प्रसाद सिंह

इस संकट को शीघ्र हल किए जाने की आवश्यकता है. देखना है कि इलाक़े में मची आपाधापी पर सरकारी स्तर से कोई क़दम उठाया जाता है अथवा नाजायज़ तरीक़े से रूपया बदलने में लगे लोग आमजनों को चूसते रहते हैं.

नित्यानंद झा
feedback@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया

www.chauthiduniya.com

दिल्ली, 8 मार्च-14 मार्च 2010

दिग्विजय सिंह

कांग्रेस निजी स्वार्थों की पूर्ति में उलझी

राहुल गांधी

पार्टी के राष्ट्रीय महासचिव राहुल गांधी मध्य प्रदेश का दौरा भले ही कर चुके हैं, लेकिन संगठन के नेता आपसी गुटबाज़ी से बाज नहीं आ रहे हैं. हर शख्स अपना स्वार्थ साधने में व्यस्त है. नतीजतन, कांग्रेस यहां कमज़ोर पड़ती जा रही है, जो भविष्य के लिए अच्छा संकेत नहीं है.

संध्या पांडेय

कांग्रेस के युवा नेता राहुल गांधी मध्य प्रदेश को राष्ट्रीय राजनीति में कितना महत्वपूर्ण मानते हैं, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि यहां टुकड़ों में विभाजित कांग्रेस को एकत्र कर पाने की कोई पहल किसी स्तर पर नहीं की जा रही. मध्य प्रदेश कांग्रेस इन दिनों अलग-अलग धड़ों में विभाजित है. कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष सुरेश पचौरी अपने पांच भक्तों के साथ कांग्रेस को पार लगाने का असफल प्रयास कर रहे हैं. दूसरी ओर पूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह अपनी संन्यास की राजनीति को मध्य प्रदेश में पुन: वापसी की संभावनाओं के साथ जोड़कर चल रहे हैं. तीसरी ओर कांग्रेस का वह उपेक्षित तबका है, जो वर्तमान प्रभावशाली नेताओं द्वारा कुचला जा चुका है. अपनी तीन टांग लगातार फंसाता रहता है. कुछ वरिष्ठ नेता ऐसे भी हैं, जो केवल सोनिया गांधी के साथ होने के कारण लगातार पीसे जा रहे हैं.

मध्य प्रदेश कांग्रेस की राजनीति लगातार सात साल विपक्ष में रहने के बाद भी सत्ताधारी दल की शैली में ही चल रही है. दिग्विजय सिंह के दस वर्ष के शासनकाल के दौरान कांग्रेस की राजनीति जनता से अलग हटकर प्रबंध की राजनीति में परिवर्तित हो गई. नतीजतन, कांग्रेस बहुमत से खिसक कर अल्पमत में आ गई. कांग्रेस के वर्तमान अध्यक्ष सुरेश पचौरी अपने पूर्व युवा कांग्रेस अध्यक्ष कार्यकाल की उपलब्धियों का बॉयोडाटा लेकर मध्य प्रदेश कांग्रेस को संचालित कर पाने में पूर्णत: अक्षम रहे. पचौरी के नेतृत्व में कांग्रेस ने लगातार चुनाव हारे हैं. इसका प्रमुख कारण पचौरी के चंद विश्वस्त लोगों का राजनैतिक अभिनय और पचौरी की दूरदर्शिता में आई व्यापक कमी है. अद्भुत संगठन क्षमता के लिए पहचाने जाने वाले पचौरी इस कार्यकाल के दौरान मध्य प्रदेश कांग्रेस के हितों का संरक्षण करने के बजाए कुछ लोगों के संरक्षण तक सीमित हो गए. परिणामत: कांग्रेस विपक्ष में रहने के बावजूद मैदान से ग़ायब हो गई.

दूसरी ओर पूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह अपनी जोड़तोड़ की राजनीति के कारण कांग्रेस हाईकमान के श्रेष्ठ प्रबंधन लीडर बनकर उभरे. दिग्विजय ने मध्य प्रदेश से अर्जुन सिंह, श्रीनिवास तिवारी, सुभाष यादव जैसे नेताओं का अस्तित्व पूरी तरह समाप्त कर दिया. कमलनाथ अपने सीमित स्वार्थों की पूर्ति के लिए राज्य में राजनीति करते हैं. यह सभी जानते हैं कि सिंधिया अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार कभी नहीं कर पाए. दिग्विजय को केवल श्रीनिवास तिवारी, अर्जुन सिंह और सुभाष यादव जैसे नेताओं को ठिकाने लगाना था, वह कार्य उन्होंने अपनी राजनैतिक समझ के अनुसार पूरा कर लिया. आज दिग्विजय सिंह का अस्तित्व ज़मीनी स्तर पर भले न हो, प्रबंध और मीडिया के स्तर पर दिग्विजय सिंह राज्य के एकमात्र नेता के रूप में स्थापित हैं. कांग्रेस का एक बड़ा वर्ग इस समय मजबूरी में ही सही, उन्हें प्रदेश और देश का भविष्य मानकर चल रहा है.

कांग्रेस में तीसरा गुट कभी महत्वपूर्ण हुआ करता था. इसमें पूर्व प्रदेश अध्यक्ष एवं कभी सहकारिता महाप्रभु कहे जाने वाले सुभाष यादव एवं जमुना देवी जैसे नेताओं को शामिल किया जा सकता है. सुभाष यादव ने अपने राजनैतिक अनुभव की बदौलत अपने पुत्र को न सिर्फ़ लोकसभा चुनाव जिताया, बल्कि उन्हें केंद्रीय मंत्री के पद तक पहुंचाने में सफलता अर्जित की. जमुना देवी वैसे तो मध्य प्रदेश विधानसभा में प्रतिपक्ष की नेता हैं, पर उन पर आएदिन कांग्रेसी नेताओं के प्रहार जारी रहते हैं. दिग्विजय सिंह ने दस वर्ष के शासनकाल के दौरान जमुना देवी और उनकी आदिवासी राजनीति को हर कदम पर कुचलने का षड़यंत्र किया. यह बात अलग है कि कांग्रेस अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी के व्यापक संरक्षण एवं संवेदनाओं के चलते जमुना देवी अपने पद पर स्थिर रहीं. वर्तमान में भी उन्हें प्रतिपक्ष के नेता पद से विस्थापित करने की हरसंभव कोशिश राज्य स्तर पर की जा रही है.

जमुना देवी मध्य प्रदेश की सबसे वरिष्ठ कांग्रेस विधायक हैं. राजनीति में व्यापक अनुभव रखने वाली इस वयोवृद्ध नेता को राज्य की आदिवासी राजनीति के हर बारीक पहलू का व्यापक ज्ञान है. यह बात अलग है कि वर्ष 1980 के बाद से कांग्रेसी राजनीति का संभ्रांत तबका आदिवासियों को हर कदम पर पीछे छोड़ने के लिए लगातार षड़यंत्र करता रहा है. संभवत: जमुना देवी का सबसे बड़ा दोष यही है कि वह राज्य में प्रभावशील किसी राजनैतिक गिरोह की सदस्य नहीं हैं और सीधे कांग्रेस हाईकमान के निर्देशों का पालन करना उचित समझती हैं.

मध्य प्रदेश में कांग्रेस की विपक्षी राजनीति इस तरह कमज़ोर है कि आपस में एक दूसरे की टांग खींचने के अलावा वह भाजपा सरकार के विरोध में कोई बड़ा जनआंदोलन नहीं खड़ा कर सकी. जनहितकारी मुद्दों को केवल अपने बयानों तक सीमित रखने वाले राज्य के नेता भविष्य को सुरक्षित करने की चाह में अधिक से अधिक लाभ लेने के लिए भाजपा सरकार के विरोध की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे हैं. प्रदेश कांग्रेस कमेटी बुनियादी सुविधाओं की चाह में भाजपा सरकार को कठघरे में खड़ा करने की कभी कोशिश ही नहीं कर पाती. राज्य में पिछले दिनों भ्रष्टाचार के विभिन्न प्रकरणों पर कांग्रेस ने केवल काग़ज़ी बयान जारी किए. महंगाई के मामले में प्रधानमंत्री द्वारा राज्यों की ज़िम्मेवारी के प्रति जागरूकता लाने के लिए कांग्रेस कोई आंदोलन खड़ा नहीं कर सकी. आतंक और गुंडागर्दी के प्रति भी प्रदेश कांग्रेस पूरी तरह तटस्थ है. वास्तव में यह एहसास कर पाना मुश्किल है कि मध्य प्रदेश में कांग्रेस संगठन कहीं है भी. यह उम्मीद की जाती है कि पार्टी के नेता अगले विधानसभा चुनाव के दौरान पुन: अपनी दावेदारी का बॉयोडाटा लेकर कांग्रेस हाईकमान के सामने काग़ज़ी बयानों के साथ जनप्रिय होने का दावा ज़रूर प्रस्तुत करेंगे. मध्य प्रदेश में विपक्ष की अनुपस्थिति भाजपा सरकार के लिए वरदान साबित हो रही है.

राजधानी में इन दिनों वैसे दलाल बहुत सक्रिय हैं, जो दोनों दलों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का काम करते हैं. इन दलालों से कांग्रेस और भाजपा के नेता आधी रात को मिलना पसंद करते हैं. कांग्रेस महासचिव एवं युवा नेता राहुल गांधी उत्तर प्रदेश और बिहार की राजनीति में भले ही कुछ अर्जित कर लें, पर मध्य प्रदेश की राजनीति में नेताओं की नीतियों के प्रति लगातार उपेक्षा भविष्य के लिए एक ख़तरनाक संकेत है. पिछले दिनों राहुल गांधी की यात्रा के दौरान चेहरा दिखाने और स्वयं को संगठन का सबसे क्रियाशील व्यक्ति बताने की की होड़ लगी रही. मौजूदा स्थिति यह है कि कांग्रेस अध्यक्ष स्वयं हाईकमान के कितने क़रीब हैं, इस बात पर हर कांग्रेसी को संदेह है. आगामी राज्यसभा चुनाव में कांग्रेस अध्यक्ष की स्थिति यह स्पष्ट करेगी कि हाईकमान मध्य प्रदेश के इस अप्रभावशील कांग्रेसी ढांचे को मान्यता देता भी है या नहीं.

feedback@chauthiduniya.com

जमुना देवी

सुरेश पचौरी

सदन में कांग्रेस आपस में भिड़ी

चौधरी राकेश सिंह

डॉ कल्पना पारुलेकर

ईश्वर दास रोहाणी

मध्य प्रदेश में भ्रष्टाचार की ख़बरों को लेकर राज्य का वर्तमान विधानसभा सत्र बहुत गर्म है. कांग्रेस के विधायक सदन में भ्रष्टाचार पर चर्चा करने के लिए उतावले नज़र आ रहे हैं. लेकिन कांग्रेस की आपसी गुटबाज़ी इस भ्रष्टाचार की चर्चा के विषय को लेकर बार-बार सामने आ रही है. दिग्विजय शासन काल में कांग्रेस के जिन नेताओं पर भ्रष्ट आचरण के आरोप लगातार लगते रहे हैं, आज भाजपा को कटघरे में देखकर उनकी बाछें खिली हैं.

मध्य प्रदेश विधानसभा में कांग्रेस पक्ष के उपनेता और कांग्रेस विधायिका कल्पना पारूलेकर से व्यवस्था को लेकर कहासुनी की नौबत आ गई. कांग्रेस चाहती है कि भ्रष्टाचार पर खुलकर चर्चा करके वह राज्यस्तर पर यह संदेश भेज सके कि पार्टी अभी जनसमस्याओं के लिए सक्रिय है. परन्तु कांग्रेस के ही कुछ विधायक ऐसे भी हैं, जो भ्रष्टाचार को चर्चा के लिए सदन में प्रमख मुद्दा नहीं मानते. विधानसभा में सार्वजनिक रूप से आपसी टकराव का परिणाम यह है कि विधान सभा में कांग्रेस के उपनेता चौधरी राकेश सिंह चतुर्वेदी असंधी की इस व्यवस्था से संतुष्ट हो जाते हैं. कांग्रेसी विधायिका कल्पना पारूलेकर, आरिफ अकील और स्वयं नेता प्रतिपक्ष जमुना देवी भ्रष्टाचार पर अलग से स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा चाहते हैं, पर वे अपने ही लोगों से परेशान हैं. भ्रष्टाचार के मुद्दों से तटस्थ रहते हुए वरिष्ठ विधायक अजय सिंह सदन की कार्यवाही को अनेक ज़रूरी मुद्दों से परे रखना चाहते हैं. यही कारण है कि कांग्रेस संयुक्त रूप से हमला कर पाने में अब तक असफल रही है.

उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के वर्तमान विधायकों में से अधिकांश वे चेहरे हैं जो दिग्विजय शासन काल के दौरान भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरे हुए थे. इनमें से कुछ नेताओं के विषय में लोकायुक्त द्वारा दी गई टिप्पणी आज भी उन्हें भयभीत करती रहती है. कांग्रेस के अनेक प्रभावशाली नेताओं के विरूद्ध सहकारिता आन्दोलन में कथित रूप से किए गए भ्रष्टाचार पर वर्तमान सरकार पहले ही कार्यवाही कर चुकी है. हालांकि आरोप है कि भाजपा सरकार द्वारा ही दिग्विजय सिंह के कार्यकाल के दौरान हुए भ्रष्टाचार के सभी प्रमुख मामलों को एक गोपनीय समझौते के तहत या तो दबा दिया गया है. कांग्रेस के अनेक प्रभावशील नेता स्वयं भाजपा की इस शासन व्यवस्था का पूरा लाभ व्यक्तिगत हितों के लिए भी उठा रहे हैं. इन स्थितियों में कांग्रेस द्वारा भ्रष्टाचार पर चर्चा की मांग करना बेमानी लगता है.

ईश्वरदास रोहाणी ने हाल ही में एक कड़ी टिप्पणी जबलपुर में 28 साल से पदस्थ एक डिप्टी कलेक्टर के संबंध में की है.

कस्तूरबा गांधी बालिका छात्रावास बदइंतजामी का शिकार

दो कमरों में सौ छात्राएं!

असगर कुरैशी

आदिवासियों के कल्याण और उत्थान के कार्यक्रमों में सरकारी अमले की कितनी ज़्यादा रुचि है, इसका प्रमाण मंडला ज़िला मुख्यालय से 80 किलोमीटर दूर गांव सुखराम में कस्तूरबा गांधी बालिका छात्रावास को देखने से मिल जाता है. मात्र दो कमरों वाले छात्रावास में 100 आदिवासी बच्चियों को ठूंस-ठूंसकर रखा गया है. बच्चियां छात्रावास में बेजुबान जानवरों की तरह रहती हैं, लेकिन सरकारी कर्मचारी उन्हें घर भी नहीं जाने देते, क्योंकि सरकार का संकल्प है कि हर आदिवासी बालक-बालिका को शिक्षा, छात्रवृत्ति और छात्रावास की सुविधा दी जाए.

असल में सरकारी अमला किन्हीं नेक इरादों से इन छात्राओं को छात्रावास में रहने के लिए मजबूर नहीं कर रहा है, स्वार्थ सरकारी अमले का है. अधिक से अधिक छात्राओं की उपस्थिति बताकर उन्हें मिलने वाले भोजन, यूनीफॉर्म, पठन-पाठन सामग्री, मासिक छात्रवृत्ति आदि सुविधाओं के लिए शासन से प्रतिमाह भरपूर पैसा वसूला जाता है. लेकिन वह पैसा छात्राओं तक कितना पहुंचता है, यह जांच का विषय है. छात्रावास में रहने वाली छात्राओं का कहना है कि इस छात्रावास में कोई सुविधा नहीं है. केवल एक शौचालय है, इसलिए ज़्यादातर छात्राओं को शौच के लिए जंगल में जाना पड़ता है. नहाने के लिए नदी है, इसलिए छात्रावास में पानी का पर्याप्त इंतजाम भी नहीं रहता है. नदी गहरी है और जिन छात्राओं को तैरना नहीं आता है, उनके लिए मुसीबत है. वर्षा ऋतु में कुछ छात्राओं को गांव वालों ने डूबने से बचाया था.

सच्चाई यह है कि छात्रावास पहले उप स्वास्थ्य केंद्र का हिस्सा था. फिर स्कूल भवन के दो कमरों में ही छात्रावास को स्थानांतरित कर दिया गया. यहां पर सौ छात्राएं रखी गई हैं. प्रशासन को इसकी पूरी जानकारी है और इसीलिए सरकार ने एक नया छात्रावास बनाने का काम शुरू किया, लेकिन केवल प्रचार के लिए. क्योंकि, लोकसभा चुनाव के पहले तत्कालीन भाजपा सांसद फग्गनसिंह कुलस्ते को छात्रावास का लोकार्पण करना था, इसलिए आधे-अधूरे भवन का लोकार्पण कराकर छात्रावास बनाने का काम रोक दिया गया. इसलिए पुराने दो कमरे वाले छात्रावास में ही छात्राएं रह रही हैं. चूंकि नए अधबने छात्रावास में न तो पानी की व्यवस्था है और न बिजली की. ऐसे में उसमें रहना मुश्किल है. शरारती तत्वों ने इस भवन की खिड़कियां और दरवाज़े भी उखाड़ लिए हैं. अतः यह असुरक्षित भी हैं.

छात्रावास में तमाम तरह की अव्यवस्था और असुविधा है. ज़िला कलेक्टर को इस बारे में जानकारी है, लेकिन वह केवल उचित कार्यवाही करने का आश्वासन देने के अलावा ज़्यादा कुछ नहीं कर सके. यह छात्रावास इस क्षेत्र में बैगा जनजाति की बालिकाओं को शिक्षित करने के कार्यक्रम के तहत बनाया गया है, लेकिन न तो यहां शिक्षा की व्यवस्था है, न रहने की जगह और न ही जीवन के लिए ज़रूरी सुविधाएं. राजीव गांधी शिक्षा मिशन के तहत संचालित इन छात्रावासों एवं आदिवासी विद्यालयों की स्थिति और उनके ख़र्च की उच्च स्तरीय जांच कराए जाने की आवश्यकता है. उससे पता चल जाएगा कि शासन आदिवासियों के कल्याण के लिए जो पैसा देता है, उसका कितना अंश वास्तव में हितग्राहियों तक पहुंच पाता है और बाकी किनकी जेब या तिज़ोरी में चला जाता है.

आदिवासियों के नाम पर घपले और घोटाले

मध्य प्रदेश के अधिकांश आदिवासी छात्रावासों एवं आश्रम-शालाओं में छात्रवृत्ति के नाम पर करोड़ों रुपये का घोटाला उजागर हुआ है. छात्रावासों में वास्तविक छात्रों की संख्या कम होने पर भी सरकारी अमला संख्या ज़्यादा बताता है और स्कूलों में प्रवेश भी ज़्यादा छात्रों का बताया जाता है. इस प्रकार संख्या के आधार पर छात्रों के नाम से छात्रवृत्ति की रकम शासन से मंजूर करा ली जाती है और नियमित रूप से हर माह निकाली जाती है. लेकिन, वास्तविक छात्रों को छात्रवृत्ति भुगतान के बाद जो पैसा बचता है, वह ऊपर से नीचे तक बंट जाता है.

जानकारी के अनुसार, राज्य में कटनी, जबलपुर, धार, झाबुआ, खंडवा, खरगौन, बड़वानी, बुरहानपुर, इंदौर, उज्जैन, ग्वालियर, रतलाम, सागर, दमोह, रायसेन और भोपाल ज़िलों के छात्रावासों में बड़े पैमाने पर अनियमितता पाई गई है. एक मोटे अनुमान के अनुसार, हर माह शासन को छात्रवृत्ति मद में लाखों रुपये का चूना लगाया जाता है. छात्रों के भोजन, बिस्तर और अन्य सुविधाओं पर होने वाले ख़र्च में भी बड़ी हेराफेरी होती है. काग़ज पर नए कपड़े, कंबल, गद्दे और दरी ख़रीदना बताया जाता है, लेकिन छात्रों को फटे-पुराने कपड़े ही दिए जाते हैं. भोजन की क्वालिटी भी अच्छी नहीं होती.

feedback@chauthiduniya.com

झूठ की बुनियाद पर भविष्य की पाठशाला

युगल किशोर तिवारी

आदिवासियों के बीच शिक्षा के व्यवसायीकरण की उद्योगपतियों की कोशिश छत्तीसगढ़ में कामयाब होती जा रही है. पूंजीपति और व्यवसायी शिक्षा के सभी स्थापित मापदंडों को तोड़ते हुए पूरी तरह व्यवसायिक शक्ल देने में लगे हुए हैं. राज्य शासन इनके दबाव में शिक्षा की बुनियादी मान्यताओं को ठुकरा कर व्यवसायीकरण के इस कार्यक्रम में बराबर का सहभागी बन चुका है.

जांजगीर ज़िले में 228 निजी विद्यालय संचालित किए जा रहे हैं. यह आंकड़ा चौंकाने वाला हो सकता है, परंतु उससे अधिक चिंता का विषय यह है कि उनमें से 80 फ़ीसदी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर की शिक्षा का भी निर्धारित मापदंड पूरा नहीं किया गया है. इसके बावजूद शासन द्वारा मान्यता और अनुदान दिया जा रहा है. ज़िले में ऐसे कई विद्यालय हैं, जहां केवल परीक्षा के समय ही भवनों को खोला जाता है. सीमावर्ती राज्यों के छात्र इन भवनों में परीक्षा की औपचारिकता पूरी करने के लिए ही आते हैं. इसके बदले शिक्षा केंद्र संचालक इन छात्रों से मोटी रकम फ़र्ज़ी डिग्री देने के एवज में वसूल करते हैं.

जांजगीर क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर के शिक्षा माफ़िया काम करते हैं. यहां अन्य राज्यों के विद्यार्थी केवल परीक्षा देने की औपचारिकता पूरी कर उत्तीर्ण होने का प्रमाणपत्र आसानी से प्राप्त कर लेते हैं. जांजगीर ज़िला मुख्यालय से 35 किलोमीटर दूर ग्राम गोधना में स्थापित एक कुख्यात शिक्षण संस्थान को 1974 में मान्यता दी गई थी और 1981 से लगातार अनुदान भी दिया जा रहा है. इस शिक्षण संस्थान का किसी भी बैंक में कोई खाता नहीं है, जबकि इसके द्वारा अब तक लाखों रुपये दान और चंदे के रूप में एकत्र किए गए हैं. यही नहीं, संस्थान ने गांव की 11 एकड़ ज़मीन पर भी ज़बरन क़ब्ज़ा कर लिया है. समिति के अध्यक्ष जीतेंद्र यादव और सचिव पुरुषोत्तम कुर्रे यद्यपि इस बात से इंकार करते हैं, परंतु तहसीलदार नवागढ़ की जानकारी के अनुसार विद्यालय को विधिवत पट्टा आवंटित नहीं किया गया है. जांजगीर क्षेत्र में संचालित होने वाले विद्यालयों की स्थिति शिक्षकों की अनुपस्थिति के कारण विशेष तौर पर ख़राब रहती है. कई शिक्षण समितियों के पास भवन नहीं है. कुछ समितियां राज्य शासन द्वारा अनुमोदित प्रमाणपत्रों के आधार पर अस्थाई रूप से शहर में शिक्षा कार्यों का संचालन होना दिखाती हैं. इन विद्यालयों में अयोग्य और अल्पशिक्षित लोगों को बतौर शिक्षक भर्ती करके केवल औपचारिकता की पूर्ति की जाती है. बलोदा के लूंडरा अकलतारा के गांव करनाई एवं सिंगड़ा में संचालित स्कूल नौ माह तक अस्तित्व में नहीं रहता. ग्राम मेहंदी में संचालित मारुति नंदन स्कूल एक कमरे में संचालित होता है. विद्या भारती पचेढ़ा राष्ट्रीय सेवा योजना विद्यालय बसंतपुर उन स्कूलों में शामिल है जहां सीबीएससी अनुमोदन के बिना छात्रों को परीक्षाएं दिलाई जाती हैं. जांजगीर में केवल एक बीएड कॉलेज है जिसके पास स्वयं का कोई भवन नहीं है, पर यहीं से शिक्षकों को डिग्रियां वितरित की जाती हैं.

जर्जर हालत में स्कूल

> जांजगीर क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर के शिक्षा माफ़िया काम करते हैं. इस ज़िले में अन्य राज्यों के विद्यार्थी केवल परीक्षा देने की औपचारिकता पूरी कर उत्तीर्ण होने का प्रमाणपत्र आसानी से प्राप्त कर लेते हैं.

जांजगरी संभवतः देश का वह पहला ज़िला होगा जहां शिक्षा के क्षेत्र में समूचा फ़र्ज़ीवाड़ा एक पूर्ण निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार होता है. इसमें नेताओं, अधिकारियों, कर्मचारियों आदि सभी का हिस्सा सत्र प्रारंभ होने के पूर्व ही निर्धारित हो जाता है. ज़िले में मान्यता देने, अनुदान दिलवाने सालभर के फ़र्ज़ी कारोबार पर छापा न डालने आदि के अलग-अलग रेट निर्धारित हैं. जिसका भुगतान संचालन करने वाली संस्था को करना होता है.

इस संदर्भ में चौथी दुनिया संवाददाता ने जब ज़िला शिक्षा अधिकारी एम.एल. सोनवानी से चर्चा की तो उन्होंने स्वीकार किया की 80 स्कूलों में मान्यता व अनुदान संबंधी दस्तावेजों के परीक्षण कराने के लिए विभाग द्वारा नोटिस जारी किया गया है. संबंधित विद्यालयों ने अभी तक दस्तावेज जमा नहीं किए हैं. रिपोर्ट आने पर इस संदर्भ में कार्यवाही की जाएगी. शिक्षा शिक्षा अधिकारी के इस काग़ज़ी आश्वासन से जांजगीर क्षेत्र में पल रहा शिक्षा माफ़िया कमज़ोर नहीं होने वाला है. शिक्षा के क्षेत्र में जांजगीर फ़र्ज़ी डिग्रियों और प्रमाण पत्रों का एक मुख्य केंद्र बनकर उभर रहा है जिसके प्रति राज्य सरकार पूरी तरह लापरवाह बनी हुई है.

feedback@chauthiduniya.com

सार-संक्षेप

नौ लाख किसान क़र्ज़ माफ़ी के इंतज़ार में

मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान राज्य के भोले-भाले मेहनतकश किसानों की सहानुभूति बटोर कर अपनी राजनीति चमकाना तो जानते हैं, लेकिन वे किसानों के हित में काम कैसे करते हैं, इसकी नज़ीर यह है कि किसानों की क़र्ज़ माफ़ी की घोषणा हुए एक वर्ष हो गया, लेकिन आज भी नौ लाख किसान अपनी क़र्ज़ माफ़ी का इंतजार कर रहे हैं. शासन की सुस्ती और लापरवाही के कारण क़र्ज़ माफ़ी की प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाई है, जबकि राज्य सरकार ने केंद्र सरकार से क़र्ज़ माफ़ी के एवज में 951 करोड़ रुपये की धनराशि ले ली है. आम क़र्ज़ माफ़ी योजना के अंतर्गत केंद्र सरकार ने किसानों के 1997 से 2007 तक की अवधि के क़र्ज़ माफ़ कर दिए हैं और राज्य सरकार को उसकी ओर से इस मद में 951 करोड़ रुपये का भुगतान भी कर दिया गया है. केंद्र से पैसा लेने के बाद भी राज्य सरकार ने क़र्ज़ माफ़ी नहीं की है. विश्वसनीय सूत्रों से पता चला है कि राज्य के कई ज़िलों से किसानों के क़र्ज़ संबंधी खातों की जांच के बाद अभी तक राज्य सरकार को रिपोर्ट ही नहीं मिली है कि किस किसान का कितना शेष ऋण माफ़ किया जाना है. इसलिए देरी हो रही है.

सरकार के प्रति जनता निरपेक्ष

सरकार ने पिछले दिनों बजट के मामले में जनता से सुझाव मांगे थे और यह प्रचार किया था कि सरकार जनता की भावनाओं को ध्यान में रखकर ही बजट तैयार करेगी. भारी प्रचार के बाद हाल ही में नतीजा सामने आया कि लगभग सवा छह करोड़ की जनसंख्या वाले इस राज्य में, जहां साक्षरता का प्रतिशत 70 तक है और हज़ारों की संख्या में स्नातक, स्नातकोत्तर, इंजीनियर, प्रबंधक और डॉक्टर हैं, वहां बजट के बारे में सरकार को सुझाव देने में केवल एक व्यक्ति ही सामने आया. बजट पर जनता के सुझाव मांगने का काम सरकार के वित्त विभाग ने 11 फरवरी से किया, लेकिन एक सप्ताह बाद जब राज्य सरकार की वेबसाइट पर स्थिति की जानकारी ली गई तो पता चला कि केवल एक व्यक्ति ने ही सुझाव दिया है. यह सुझाव भी एक तरह से मांग या प्रार्थना की तरह है. सुझाव है कि सरकारी कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति की आयु 60 से बढ़ा कर 65 वर्ष की जानी चाहिए. प्रशासन के जानकारों का कहना है कि यह एक ऐसा सुझाव है, जिसे स्वीकार करना संभव नहीं है लेकिन हरदम कुछ नया कर दिखाने के जोश में मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने इस सुझाव को मान लिया और लागू भी कर दिया. लेकिन इससे जनता की सरकार के प्रति निरपेक्षता भी उजागर हो गई है.

केंद्र को मध्य प्रदेश सरकार पर भरोसा नहीं

भ्रष्टाचार, वित्तीय घपलों, घोटालों और केंद्रीय धन के दुरुपयोग के बढ़ते मामलों के कारण केंद्र सरकार ने अब अपने सहयोग से राज्य में चलाई जा रही विकास एवं जनकल्याण की योजनाओं पर व्यय की जाने वाली धनराशि का ऑडिट अपने अफसरों से कराने का फ़ैसला लिया है. विशेषकर आदिवासी क्षेत्रों में केंद्रीय योजनाओं पर ख़र्च का ऑडिट केंद्र के अधिकारी करेंगे. इस फ़ैसले से राज्य के आला अफसरों में हड़कंप मच गया है. राज्य के अधिकारी और नेता इसे अनुचित केंद्रीय हस्तक्षेप मानते हैं, लेकिन केंद्र का मानना है कि केंद्रीय ऑडिट कराने का उसे पूरा अधिकार है. आदिवासियों, विशेषकर पिछड़ी जातियों के विकास पर ख़र्च होने वाली राशि का सही उपयोग राज्य सरकार कर पा रही है अथवा नहीं, इस पर नज़र रखने और योजनाओं को सीधे फील्ड में जाकर ऑडिट करने की ज़िम्मेदारी केंद्र सरकार ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय के मुख्य लेखाधिकारी ए एन बख़्शी को सौंपी है. पता चला है कि बख़्शी दिल्ली से सीधे जबलपुर होते हुए डिंडौरी जाएंगे और वहां पर बैगा विकास प्राधिकरण का ऑडिट करेंगे. साथ ही वन एवं राजस्व अधिकारियों की बैठक लेंगे. इसके बाद विशेष केंद्रीय सहायता एवं सीसीडी प्लान, जनश्री योजना से लाभान्वित हितग्राहियों से चर्चा के साथ भौतिक सत्यापन करेंगे. मंडला में बैगा ग्रामों का निरीक्षण और बैहर विकास प्राधिकरण का ऑडिट किया जाएगा. इसके बाद वह छिंदवाड़ा ज़िले के तामिया विकासखंड में भारिया प्राधिकरण का ऑडिट करेंगे और वन एवं राजस्व अधिकारियों की बैठक लेंगे. पातालकोट प्राधिकरण का ऑडिट और विभिन्न योजनाओं का भौतिक सत्यापन करने के बाद वह दिल्ली रवाना हो जाएंगे. केंद्र सरकार विशेष पिछड़ी जातियों के नाम पर हर वर्ष लगभग 200 करोड़ रुपये की राशि ख़र्च करती है. यही नहीं, केंद्रीय सहायता में भी हर वर्ष आदिवासी क्षेत्रों के लिए 150 करोड़ रुपये मुहैया कराए जाते हैं. आदिवासी ज़िलों में नियुक्ति, ख़रीदारी और निर्माण कार्यों में भारी पैमाने पर भ्रष्टाचार होने की शिकायतें लगातार मिल रही हैं, परंतु सरकार अंकुश लगाने में नाकाम है.

बुंदेलखंड पैकेज समिति के समन्वयक बदले

कांग्रेस महासचिव राहुल गांधी की सक्रियता के बाद बुंदेलखंड की तरफ राज्य सरकार ने राजनैतिक कारणों से ध्यान देना तो शुरू किया है, लेकिन प्रशासन पर पकड़ न होने के कारण केंद्र से प्राप्त बुंदेलखंड पैकेज को लागू करने के प्रति वह अभी भी लापरवाह बनी हुई है. पैकेज की घोषणा होते ही राज्य सरकार ने बुंदेलखंड पैकेज समिति का गठन कर प्रमुख सचिव देवेंद्र सिंघई को इसका समन्वयक नियुक्त कर दिया था, लेकिन सिंघई ने कोई काम ही नहीं किया. वह सरकार के योजना, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग के प्रमुख सचिव हैं. उन्होंने नया दायित्व स्वीकार करने के बाद पैकेज के लिए कार्ययोजना बनाने के काम में कोई रुचि नहीं ली. मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान भी समिति और समन्वयक के भरोसे सब काम छोड़कर आराम से बैठ गए थे, लेकिन जब उनका ध्यान इस ओर दिलाया गया तो वह नाराज़ हुए और उन्होंने सिंघई को हटाकर कृषि विकास विभाग के प्रमुख सचिव आई एस दाणी को समन्वयक नियुक्त कर दिया. मुख्यमंत्री इसलिए भी सिंघई से नाराज़ हैं कि बुंदेलखंड पैकेज को लेकर उनके द्वारा बुलाई गई बैठकों में समन्वयक होते हुए भी सिंघई उपस्थित नहीं हुए. कई बैठकों में वह गायब रहे, लेकिन फिर भी मुख्यमंत्री बर्दाश्त करते रहे. केंद्र सरकार से चालू वित्त वर्ष के लिए बुंदेलखंड पैकेज के मद में लगभग 400 करोड़ रुपये का विशेष आवंटन प्राप्त हुआ है और इसके ख़र्च के लिए राज्य सरकार से कार्ययोजना मांगी गई है, लेकिन सिंघई ने कार्ययोजना बनाने में कोई रुचि नहीं ली. नतीजा यह है कि वित्तीय वर्ष समाप्त होने में मात्र कुछ ही दिन बचे हैं और इस अवधि में सरकार को 400 करोड़ रुपये ख़र्च करने की योजना बनाना और उसे लागू करना है. यह एक कठिन काम है. मध्य प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र देश के अति पिछड़े और ग़रीब क्षेत्रों में शुमार होता है. इस अंचल में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय राज्य की औसत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 18051 रुपये से भी काफ़ी कम है. राज्य में ज़्यादातर खेती भगवान भरोसे होती है, क्योंकि यहां सिंचाई की सुविधाएं काफ़ी कम हैं. विकास के लिए बुनियादी आधारभूत ढांचा भी काफ़ी कमज़ोर है. शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी समाज उपयोगी सेवाओं की स्थिति काफ़ी कमज़ोर है. राज्य सरकार की वित्तीय स्थिति भी दयनीय है, लेकिन जब केंद्र से पैसा मिलता है तो अधिकारी उस पैसे के सदुपयोग के लिए काम ही नहीं करना चाहते हैं. इस कारण यह राज्य ग़रीबी और पिछड़ेपन के अभिशाप से मुक्त नहीं हो पाता.

दो माह में 26 बार बंद हुए बिजली संयंत्र

मध्य प्रदेश पॉवर जनरेटिंग कंपनी लगातार बिजली उत्पादन पर तो ज़ोर दे रही है, लेकिन बिजली संयंत्रों के रखरखाव और मरम्मत की ओर उसका कोई ध्यान नहीं है. इसीलिए सारणी सतपुड़ा ताप विद्युत गृह की छोटी-बड़ी उत्पादन इकाइयां दो माह में 26 बार बंद हुई हैं. इससे करोड़ों रुपये का विद्युत उत्पादन न होने से कंपनी को भारी घाटा हुआ है. जानकारी के अनुसार, 200 मेगावाट क्षमता की 6 नंबर इकाई लीकेज के कारण बंद हो गई. इससे पहले इकाई क्रमांक तीन पहले से ही बंद है. सारणी विद्युत गृह की कुल उत्पादन क्षमता 1142.5 मेगावाट है, लेकिन अब केवल 565 मेगावाट विद्युत का उत्पादन हो रहा है. यही हाल बिरसिंहपुर पाली स्थित विद्युत परियोजनाओं का है. यहां भी विद्युत संयंत्र जब तब काम करना बंद कर देते हैं और इससे विद्युत उत्पादन बाधित होता है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

छत्तीसगढ़ में आदिवासी विकास कार्यक्रम (आइफाड) अंतरराष्ट्रीय कृषि विकास कोष और केंद्र सरकार द्वारा 2003 से सरगुजा जशपुर एवं रायगढ़ में संचालित किया जा रहा था.

विवाह उत्सव बने चोरी के केंद्र

भोपाल शहर में विवाह जैसा पावन उत्सव चोरियों का केंद्र बन गया है. दरअसल पिछले कुछ वक़्त से यहां विवाहोत्सवों में सफ़ाई से चोरी करने वाला एक गिरोह सक्रिय है. यह गिरोह न केवल चोरियां करता है बल्कि बेहद शांत और शालीन तरीक़े से चोरी करने की कला भी सिखाता है. इस वर्ष विवाह के मौसम में अब तक कई समारोहों में बिन बुलाए मेहमान के तौर पर पहुंचकर इस गिरोह ने कई चोरियां सफलतापूर्वक की हैं. इस गिरोह के लिए मैरेज गार्डन, आलीशान होटलों में आयोजित होने वाले विवाह कार्यक्रम चोरी के लिए सबसे उपयुक्त और सुविधाजनक स्थान हैं. आज की महानगरीय सभ्यता में विवाह समारोह जिस भव्य तड़क–भड़क से आयोजित किए जाते हैं और मेहमान केवल संबंधों की औपचारिकता पूरी करने आते हैं, ऐसे में आयोजक घर से दूर किसी मैरिज गार्डन या होटल में ही विवाह आयोजित करते हैं और मेहमानों के रहने, ठहरने और भोजन का प्रबंध भी उसी स्थान पर या आसपास किया जाता है. संयुक्त परिवार की समाप्त होती प्रथा और रोज़ी–रोटी के चक्कर में टूटते और बिखरते परिवारों की वजह से परिवारजनों में वर्षों तक एक दूसरे से मिलना नहीं हो पाता है. ऐसे में वे एक दूसरे से अनजान ही बने रहते हैं. ये दूरियां नज़र आती हैं पर्व–त्योहारों और शादियों जैसे मौक़ों पर, जहां परिवार के सदस्य शामिल तो ज़रूर होते हैं पर एक–दूसरे को पहचान नहीं पाते हैं. इसी अवसर का फ़ायदा उठाकर अपना हाथ साफ़ कर जाते हैं अजनबी चोर. विवाह समारोहों में शामिल होकर चोरी करने वाला एक गिरोह भोपाल में अपने करतब दिखा रहा है.

इस चोर गिरोह में वयस्क स्त्री–पुरूष, युवा, किशोर और कम उम्र के बालक, बालिकाएं शामिल हैं. यह गिरोह शहर से बाहर किसी मैरिज गार्डन या होटल में आयोजित होने वाले विवाह समारोह की पक्की जानकारी हासिल करने के बाद उसके सार्वजनिक कार्यक्रमों में शामिल हो जाता है. गिरोह के सभी सदस्य शानदार और महंगे कपड़े और आभूषण पहने शादी के अनुकूल सजे–संवरे होते हैं. ये लोग शादी में शामिल होने के कुछ ही देर बाद मेहमानों से रोचक वार्तालाप करके उनसे घुलमिल जाते हैं. गिरोह के पुरूष सदस्य पुरूषों से, स्त्री सदस्य स्त्रियों और पुरूषों से और युवक अपने हम उम्र मेहमानों से घुलमिल कर रहते हैं. बच्चे भी दूसरे मेहमान बच्चों के साथ खेलते–कूदते और उधम करते हैं.

कुछ मेहमानों से घुलमिल जाने के बाद यह गिरोह किसी बहाने से पूरे समारोह स्थल और मेहमानों के कमरों की जानकारी हासिल कर लेता है और क़ीमती सामान पर निगाह जमा लेता है. मौक़ा देखकर गिरोह के सदस्य अपनी–अपनी तय मंज़िलों पर हाथ साफ़ कर देते हैं और कुछ ही देर में रूपया, पैसा, जेवर, घड़ी और दूसरे क़ीमती सामान ग़ायब कर देते हैं. कभी–कभी तो चोरी करने के बाद, एक और जगह जाना है, जैसी बातों का बहाना करके एक लिफाफे में शुभकामना संदेश के साथ 100 रूपए का नोट रखकर वे किसी व्यक्ति को दे देते हैं और कहते हैं रात्रि में स्वागत समारोह में न आ सकें तो हमारी ओर से वर–वधू को भेंट दे दीजिएगा. उनकी इस मासूम अदा पर फिदा होकर कई बार तो विवाह समारोह का आयोजक स्वयं उन्हें इज़्ज़त के साथ दरवाजे तक छोड़ने आता है और रात्रि में भोज पर आने के लिए आग्रह भी करता है. इसके बाद यह गिरोह एक के बाद एक दूसरे और तीसरे स्थान पर जाकर चोरियां करता और फिर चैन की नींद सोता है. गिरोह के सभी सदस्य इतने सामान्य और भले नज़र आते हैं कि अनेक चोरियों के बाद भी आज तक मैरिज गार्डन या होटल के सुरक्षाकर्मी उन्हें पकड़ नहीं पाए हैं, और ना ही मैरिज गार्डन में तैनात सादी वर्दीधारी पुलिसकर्मी भी उनपर कोई शक़ कर पाते हैं.

यह गिरोह विवाह समारोह में वर–वधु के मंच पर विराजमान होने के बाद उन्हें मिलने वाले उपहार और नकद रूपयों वाले लिफाफे उठाने में भी माहिर हैं. इसके साथ ही मेहमानों की जेब साफ़ करने और घड़ी, अंगूठी, महिलाओं की चेन, मंगलसूत्र आदि ग़ायब करने में भी माहिर हैं. गिरोह के सदस्य यह सावधानी रखते हैं कि फोटो कैमरे अथवा वीडियो कैमरे से कैसे बचा जाए. जब आयोजक और उसके परिवारजन बाहर मैरिज गार्डन में मेहमानों की देखभाल, भोजन के प्रबंध और विवाह की रस्मों में व्यस्त होते हैं, तब यह चोर गिरोह उनके कमरों में घुसकर क़ीमती सामान चुरा लेता है और चुपचाप लोगों की नज़र बचाकर ग़ायब हो जाता है.

गिरोह के कारनामे

- 21 मई 2009 को गुड मैरिज गार्डन में एक विवाह समारोह में नोटों से भरा बैग चोरी हुआ और इसके अलावा 80 हज़ार रूपए का क़ीमती सामान और कुछ लोगों के पर्स, घड़ी, क़ीमती कपड़े ग़ायब हुए.
- 18 मई 2009 को सनसिटी गार्डन में कुछ पर्स चोरी हुए. इसी दिन एक विवाह समारोहों में एक बैग ग़ायब हुआ, जिसमें नकदी, जेवर और मोबाईल फोन था.
- 20 मई 2009 को वृंदावन मैरिज गार्डन में अपनी भांजी के विवाह में आए एक एनआरआई का पर्स चोरी हुआ, जिसमें हज़ारों रूपए और क़ीमती जेवर थे.
- 21 मई 2009 की रात धनवंतरी पार्क में पर्स चोरी हुआ, जिसमें वर–वधु को मेहमानों द्वारा दिए गए नकद रूपयों के कई गिफ्ट व लिफाफे थे.

इनके अलावा मेहमानों के मोटे सामान गायब होने की कई घटनाएं हैं. हाल ही में मिसरोद रोड स्थित वृंदावन गार्डन में विदाई के समय लोगों की नज़र बचाकर दो किशोर लड़के चोरी पकड़े गए. इनसे ही इस गिरोह के बारे में पता चला है, लेकिन गिरोह के अन्य सदस्यों का अभी तक कोई पता नहीं चला है. कई दिनों से पुलिस उनकी तलाश कर रही है. इन किशोरों से मिली जानकारी के अनुसार, उन्हें भी गिरोह के वयस्क सदस्यों के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं है. इतना ज़रूर पता है कि केवल विवाह समारोहों में शामिल होने के लिए ये वयस्क सदस्य इधर–उधर से बच्चों, किशोरों और महिलाओं को बटोरकर थोड़े समय के लिए भानुमति का कुनबा जोड़ लेते हैं और चोरी के बाद माल का बंटवारा करके कुनबा तोड़ देते हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

कोरकू बोली का शब्दकोष और व्याकरण तैयार

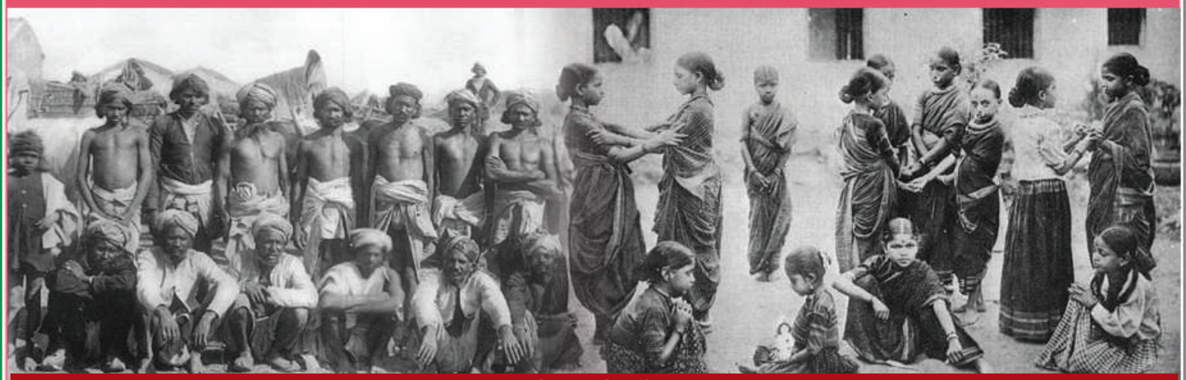

कोरकू आदिवासी.

मध्य प्रदेश के आदिवासियों की भाषा और बोली काफ़ी समृद्ध और सक्षम मानी जाती है. इस अलिखित भाषा और आदिवासी बोलियों में ज्ञान–विज्ञान और कथा साहित्य का अनंत और अति प्राचीन भंडार मौजूद है. लेकिन आधुनिकता की आंधी में इन भाषाओं और बोलियों पर दूसरी भाषाओं और बोलियों का ज़ोरदार प्रभाव आक्रमण की तरह घातक सिद्ध हो रहा है. अनेक आदिवासी बोलियां विलुप्ति की कगार पर हैं और कई बोलियों में अन्य भाषाओं के शब्दों, मुहावरों का इतना ज़्यादा मिश्रण हो गया है कि वे अपनी मौलिकता खोती जा रही हैं.

मध्य प्रदेश में कोरकू ,गोंडी, हलवा, भील, बैगा आदि कई आदिवासी भाषाएं और बोलियां प्रचलन में हैं और इनका प्रयोग करने वाली जनसंख्या भी एक करोड़ के लगभग है, लेकिन इन जनभाषाओं के संरक्षण और इनके साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए सरकारी या ग़ैर सरकारी स्तर पर कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है.

कुछ वर्ष पहले मध्य प्रदेश सरकार ने आदिवासी जनसंख्या बहुल क्षेत्रों में आदिवासी बच्चों को उनकी भाषा में शिक्षा देने की प्रक्रिया शुरू की थी, इसी प्रक्रिया में आदिवासियों की भाषाओं को लिपिबद्ध करना प्रारंभ हुआ. लेकिन आदिवासियों की समृद्ध भाषा और बोलियों का अब तक कहीं कोई व्याकरण या लिखित साहित्य नहीं है. श्रुति, स्मृति परंपरा से ही आदिवासियों की विभिन्न भाषाएं अज्ञात काल से प्रचलन में है. आधुनिक शिक्षा पद्धति और सूचना क्रांति के दौर में आदिवासियों की बोलियों पर भी नष्ट हो जाने का ख़तरा मंडराने लगा है, इसलिए मध्य प्रदेश सरकार ने आदिवासियों की बोलियों को लिपिबद्ध करने और व्याकरण तैयार करने का काम शुरू किया है. मध्य प्रदेश आदिम जाति अनुसंधान संस्थान के सहायक संपादक एलएन पयौधि के अनुसार कोरकू जनजाति, स्वयं को दुनिया की पहली इंसान प्रजाति मानती है. कोरकू शब्द का अर्थ ही मानव है. लेकिन अनादिकाल से प्रचलन में रही कोरकू बोली का अब तक कोई व्याकरण नहीं था. हाल ही में आदिम जाति अनुसंधान संस्था ने कोरकुओं की बोली का व्याकरण तैयार किया है. दुनिया के जनजाति इतिहास में मध्य प्रदेश के कोरकू ही थे, जिन्होंने हज़ारों–हज़ार वर्ष पूर्व स्वयं को मानव के रूप में संबोधित किया था. कोरकू जनजाति की बोली का एक सुविकसित इतिहास भी रहा है. मौजूदा समय में पारंपरिक बोलियों और भाषाओं पर लुप्त होने का संकट मंडरा रहा है. इन आदिम भाषाओं पर दूसरी प्रचलन वाली भाषाओं और बोलियों का आक्रमण हो रहा है. ऐसे समय में कोरकू बोली के संरक्षण का बीड़ा उठाया गया है. वैसे इस बोली के कई शब्द और मुहावरें अब प्रचलन में नहीं हैं, फिर भी उनकी खोज की जा रही है. कोरकू बोली का शब्दकोष और व्याकरण तैयार करने में भारतीय भाषा संस्थान मैसूर के पूर्व उपनिदेशक जेसी शर्मा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है. जल्दी ही कोरकू बोली के शब्दकोष और व्याकरण के बारे में पुस्तक प्रकाशित कर ली जाएगी.

कोरकू परिवार

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

आपसी खींचतान से बंद हुई आदिवासी विकास परियोजना

छत्तीसगढ़ में आदिवासी संरक्षण का दावा करने वाली रमन सरकार इसी वर्ग के हितों पर कुठाराघात करने पर आमादा है. आदिवासियों के विकास के लिए अब तक चलाए जा रहे एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम, आदिवासी विकास की परियोजना को राज्य प्रशासन ने एकाएक बंद करके इसकी दोनों ज़िला इकाइयां भंग कर दी हैं. इसके कारण पिछले सात वर्षों से आदिवासी विकास के लिए ज़िम्मेदार परियोजना के विशेषज्ञ कर्मचारी और अधिकारी बड़ी संख्या में एक साथ बेरोज़गार हो गए हैं.

छत्तीसगढ़ में आदिवासी विकास कार्यक्रम (आइफाड) अंतरराष्ट्रीय कृषि विकास कोष एवं केंद्र सरकार के संयुक्त प्रयास से वर्ष 2003 से ही सरगुजा जशपुर, एवं रायगढ़ में संचालित किया जा रहा था. दो ज़िला इकाइयों जशपुर और अंबिकापुर से लगभग 52 हज़ार आदिवासी परिवार इस परियोजना से लाभांवित थे. केंद्र सरकार और अंतरराष्ट्रीय कृषि विकास कोष की सहमति से छत्तीसगढ़ के आदिवासी कल्याण विभाग ने परियोजना को दो वर्ष तक विस्तार देने का आश्वासन दिया था. छत्तीसगढ़ सरकार ने उपरोक्त परियोजना को तत्काल प्रभाव से बंद करने का निर्णय लिया है. कार्यक्रम के स्टेट प्रोग्राम डायरेक्टर द्वारा इन कर्मचारियों का दो माह का वेतन भी रोक दिया गया है. कर्मचारियों को अन्य स्थानों पर आवेदन करने के लिए आवश्यक अनुभव प्रमाण पत्र एवं अनापत्ति प्रमाण पत्र भी नहीं दिए जा रहे हैं. मानसिक रूप से प्रताड़ित परियोजना के कर्मचारी सरकार के इस मनमाने निर्णय के विरूद्ध न्यायालय की शरण लेने को बाध्य हो रहे हैं.

आदिवासी विकास संबंधी इस कार्यक्रम के साथ संबंधित स्थानों के 52 हज़ार आदिवासियों के अतिरिक्त कई एनजीओ भी कार्यरत थे. इस परियोजना को अंतरराष्ट्रीय कृषि विकास कोष से वित्तीय मदद की जाती थी. परियोजना के अंतर्गत आदिवासियों के कृषि संबंधी कार्यों को अधिक प्रभावशील बनाने के लिए विभिन्न उपायों पर परियोजना कार्य कर रही थी. छत्तीसगढ़ के आदिवासियों में कृषि विकास संबंधी गतिविधियां धीरे–धीरे कम होती जा रही हैं. राज्य शासन के उपेक्षा पूर्ण रवैए के कारण छत्तीसगढ़ में एक नया चरित्र विकसित हुआ है, वह है औद्योगिक विकास पर ज़्यादा ध्यान रहे, भले ही इसके कारण कृषि की उपेक्षा हो जाए. इसके कारण आदिवासियों के कृषि कार्य पर संकट पैदा होने की शुरुआत हो भी चुकी है.

> कृषि विकास संबंधी गतिविधियां धीरे–धीरे कम होती जा रही हैं. राज्य शासन के उपेक्षापूर्ण रवैए के कारण छत्तीसगढ़ में विकास कार्य बिल्कुल थम से गए हैं.

इस पूरे उलटफेर के कारण राज्य के आदिवासी विकास कार्यक्रम से संबंधित ग्रामीण मज़दूरों का भुगतान भी लंबित है. वित्त विभाग और आदिवासी विभाग के बीच जारी इस खींचतान को ही इस परियोजना के अचानक बंद हो जाने का कारण माना जा रहा है.

शिव कुमार
feedback@chauthiduniya.com